जोसेफ़ श्कवोरेस्की

एमेके



□ 'एमेके : एक गाथा' (Emöke-Legenda) चेकोस्लोवाकिया (अब चेक रिपब्लिक) के सर्वाधिक विवादास्पद लेखक जोसेफ़ श्कवोरेस्की (Josef Škvorecky)का विश्व चर्चित-उपन्यास है।

'एमेके' वास्तव में जिप्सी युवती की गाथा ही है। गाथा कि जिसमें ...क स्पर्श भी होता है और महान् होने का गुण भी। जोसेफ़ को स्वयं यह ... इतनी प्रिय रही कि इसे अपनी संतान तक कह दिया। इसमें मास्टर की, ...दक की एमेके के साथ अदभुत वार्ताएं हैं, जो आध्यात्म और यथार्थ की ... व्याख्याएं करती हैं। यूं कहे कि एमेके इस उपन्यास का एक ऐसा ... बिन्दु है, जो गाथा बन जाता है, इसीलिए जीवन का सबसे बड़ा और ...क सत्य भी। 'एमेके' का विश्व की बीस से अधिक भाषाओं में अनुवाद हो ... है।

...सी के साथ इसमें 'मास्टर जी' शीर्षक कहानी भी है, जो विश्व कहानी में ...स्थान रखती है।

चेक साहित्य के मील स्तंभ जोसेफ़ ने 'कायर' (Cowards) लिखकर तहलका मचा दिया था। कम्युनिस्ट सरकार ने उस परी प्रतिबंध लगा दिया। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि जब प्रतिबंध हटा तो उपन्यास हाथों-हाथ बिक गया।

AHW HPB HINDI SERIES

हिन्द पॉकेट बुक्स

40/-

ISBN 81-216-0359-5

विश्व कथा साहित्य

• चेक

जोसेफ़ श्कवोरेस्की

एमेके



विश्व कथा साहित्य

देश-भर के सभी स्टालों पर उपलब्ध। न मिलने पर आप हमें पत्र लिख कर वी.पी. द्वारा मंगाएं। आप कहीं से भी इस सीरीज़ की पुस्तक लें, हमें पत्र द्वारा अपना पता अवश्य भेजें, ताकि हम आपको हर नई पुस्तक छपने की सूचना दे सकें। विश्व कथा-साहित्य से चुनी हुई अगर कृतियों की इस शृंखला के स्थायी सदस्य बन कर निरंतर पठन सुख पाएं और उत्कृष्ट पुस्तकों का संग्रह बनाएं।

जोसेफ़ श्कवोरेस्की

एमेके

इस पुस्तक में चेक गणराज्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'एमेके : एक गाथा' तथा एक प्रसिद्ध कहानी है 'मास्टर जी'।

हिन्द पॉकेट बुक्स

विश्व कथा साहित्य

एमेके : जोसेफ़ श्कवोरेस्की

अनुवाद : निर्मल वर्मा

सम्पादन : डॉ॰ नफ़ीस आफ़रीदी

कला-पक्ष : ज्योतिष दत्ता गुप्ता

प्रथम संस्करण : 1994

प्रकाशक : हिन्द पॉकिट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड

दिलशाद गार्डन, (शाहदरा), जी.टी. रोड, दिल्ली-110 095

लेज़र : एस.पी. प्रिंटेक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110 092

मुद्रक : भारत फ़ोटो कम्पोज़र्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110 032

EMÖKE (Fiction) JOSEF ŠKVORECKY

ISBN 81-216-0359-5



परिचय

चेकोस्लोवाकिया अब बदल चुका है। अब वहां 'चेक' और 'स्लोवाक' गणराज्य हैं। मूल देश में पैदा हुए जोसेफ़ श्कवोरेस्की चेक गणराज्य के नागरिक तथा चेक भाषा और साहित्य के महान् साहित्यकार हैं। अविभाजित राज्य के समय में ही वह बहुत ही विवादास्पद बन गए थे।

विवाद का सबसे बड़ा कारण था उनका विश्व-विख्यात उपन्यास 'द कावर्ड्स' (1958)। इस उपन्यास ने पूरे देश में हंगामा खड़ा कर दिया था।

सरकारी तौर पर यह माना गया कि लेखक ने अपनी.कृति में 1945 की क्रान्ति पर छींटाकशी की थी तथा स्वतंत्रता के लिए बनी रेड

आर्मी के प्रति भी कुछ वितृष्णा थी। इस पर घोर अपत्ति की गई। इतने बड़े लेखक के उपन्यास में इतनी भ्रान्तियां और ग़लत-सलत धारणाएं! नए सत्ताधारियों के गले यह सब उतरा नहीं। उन्होंने जोसेफ़ श्कवोरेस्की के इस उपन्यास पर तत्काल प्रतिबंध लगा दिया गया। मुख्य आरोप तो यही था कि लेखक ने लिब्रेशन आर्मी को ही 'मंगोलियन' क़रार दे दिया था। इस दृष्टि से लाल सेना बौड़म या मूर्ख हुई। भला क्रान्ति के लिए लड़ने वाले इसे बर्दाश्त कर सकते थे! जबकि जोसेफ़ स्वंय नस्लवादी बिल्कुल नहीं थे, फिर भी उनके साथ ऐसी सख़्ती की गई।

जोसेफ़ श्कवोरेस्की 1924 में जन्मे स्वस्थ, सुंदर और आकर्षक व्यकितत्व के धनी थे। उनकी बौद्धिक परम्परा विकास के शिखर छू रही थी और रचनाशीलता हमेशा ग़लत के खिलाफ़ खड़ी रही। उन पर अमरीकी लेखकों का प्रभाव था। ख़ासकर विलियम फ़ॉकनर का आवश्यकता से अधिक ही।

दिलचस्प बात तो यह है कि जब 'कावर्ड्स' पर से दो वर्ष पहले ही पाबंदी हटा ली गई, तो यह उपन्यास हाथों-हाथ बिक गया और विश्व-भर में चर्चित हो गया।

उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखीं। इनमें 'रिफ़लेक्शन ऑफ ए डिटेक्टिव स्टोरी रीडर' और 'द लायन कब' उल्लेखनीय है।

'एमेके-लेजेंडा' तो उनकी ऐसी संगीतमय और रूहानी कथा-रचना है, जिस पर स्वंय लेखक ही मोहित हैं। 'एमेके' का विश्व की 20 भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और ख़ूब ही चर्चा हुई है। इसका अनुवाद सीधे चेक भाषा से किया है हिन्दी के प्रख्यात कथाकार निर्मल वर्मा ने।

नाखोद शहर में जन्मे श्कवोरेस्की को जैज़ का नशा सवार था। पागलों की तरह बिग-बैंड बजाते थे, जबकि अमरीका की संगीत रचनाओं पर पाबंदी थी। जर्मन की गुलामी के दिन थे वे, जब जोसेफ़ श्कवोरेस्की बड़े हो रहे थे तथा घर, बाहर, समाज और देश को भी समझ रहे थे। 'कावर्ड्स' की पाबंदी से उन्हें बहुत नुक़सान हुआ। यहां तक कि 'विश्व-साहित्य पत्रिका' के सम्पादक मण्डल की नौकरी से भी हाथ धोना पड़ा।

इस बीच वह अनुवाद करते रहे। विलियम फॉकनर की 'ए फ़ेबल', अर्नेस्ट हैमिंगवे की 'फ़ेयरवेल टु आर्म्स' तथा हैनरी जेम्स की 'द एसपर्न पेपर्स' जैसी महान् कृतियों का अनुवाद करते हुए एक विशेष आनंद में डूबते चले गए।

'कावर्ड्स' आत्म-कथात्मक उपन्यास है। 1945 की क्रान्ति थी। लड़ाई समाप्त हो चुकी थी। एक छात्र दीवानों की तरह सैक्सोफ़ोन बजाया करता था। उसने अपनी आंखों से वह क्रान्ति देखी थी और सिर्फ़ उसी का वर्णन-भर था, जिस पर इतना तूफ़ान मचा।

फिर यह 'एमेके'। दो वर्ष तक जोसेफ़ इसे अपने मस्तिष्क में पालते-पोसते रहे और जब 'एमेके' गाथा बन गई, तब उसने जन्म लिया और किसी गाथा की तरह ही उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैलती चली गई।

□

कथा-क्रम

मेरा यह उपन्यास

अपनी एक कहानी में विलियम फॉकनर ने कहा है, "जो कुछ कर सकते हैं, करते हैं। जो नहीं कर सकते, वे उसके बारे में लिखते हैं।"

मैं हूबहू इसी ढंग से साहित्य में दाख़िल हुआ। जब मैं छोटा था, मुझ पर जैज़ का नशा सवार हो गया, उन दिनों जैज़ का मतवालापन कुछ वैसा ही था, जैसे आजकल बीट म्यूज़िक का नशा है।

नाखोद शहर (जहां 1924 में मेरा जन्म हुआ) के जिमनेज़ियम में हम छात्रों का एक 'बिग बैंड' था और हम पागलों की तरह अमरीकी स्विंग-संगीत बजाय्या करते थे। हम इस संगीत के लिए ख़ुद अपनी रचनाएँ तैयार करते थे, क्योंकि उन दिनों अमरीकी संगीत-रचनाओं पर पाबन्दी थी। मैं जर्मन आधिपत्य के दिनों में बड़ा हुआ था।

मेरी बड़ी तमन्ना थी कि मैं सैक्सोफ़ोनिस्ट बनूं, लेकिन मेरी प्रतिभा सिर्फ़ इतनी थी कि मैं महज़ एक शौक़िया सैक्सोफ़ोनिस्ट ही बन सकता था, उससे ज्यादा कुछ नहीं। इसीलिए फॉकनर के कथानुसार

मैंने जैज़ के बारे में लिखना शुरू कर दिया।

मेरा प्रथम आत्म-कथात्मक उपन्यास 'कायर' मई, 1945 की क्रांति के बारे में था, जब लड़ाई ख़त्म हुई थी। एक छात्र सैक्सोफ़ोनिस्ट की आँखों देखी क्रांति का विवरण, बस इतना ही।

किन्तु स्तालिनवादी-युग में ऐसी घटनाओं को सिर्फ़ अफ़सरी, साहित्यिक चौखटे के भीतर ही व्यक्त किया जा सकता था। इसलिए जब 1958 में (लेखन के दस वर्ष बाद) उपन्यास प्रकाशित हुआ, साहित्य-आलोचकों ने उसे लेकर एक भयानक स्कैण्डल खड़ा कर दिया। परिणामस्वरूप मुझे 'विश्व साहित्य पत्रिका' के सम्पादक-मण्डल से अच्छी-ख़ासी नौकरी छोड़नी पड़ी, किन्तु यही स्कैण्डल उपन्यास की विज्ञापनबाज़ी का साधान भी बन गया।

कुछ अरसे बाद कट्टर आलोचकों की उत्तेजना ठंडी पड़ गई। इस बीच मैं अनुवाद करता रहा (ए फ़ेबल –फॉकनर, फ़ेयरवेल टु आर्म्स-हैमिंगवे, द एसपर्न पेपर्स–हैनरी जेम्स आदि)। कुछ दिनों बाद मुझे अपनी रचनाएँ प्रकाशित करने की भी आज़ादी मिल गई। जैज़ की बूंद मेरी हर पुस्तक में है और जैसा आप देखेंगे 'एमेके: एक गाथा' भी उससे पूरी तरह मुक्त नहीं है।

'एमेके : एक गाथा' मेरी सबसे प्रिय साहित्यिक-सन्तान है। (दुर्भाग्यवश मेरी और कोई सन्तान नहीं है)। जन्म लेने से पूर्व वह दो वर्ष तक मेरे भीतर पकती रही। मेरे विचारों में उसका सन्देश और उसकी कविता में मेरी स्मृतियाँ।

पाठकों की गोष्ठियों में अक्सर मुझसे यह प्रश्न पूछा जाता है, महज़ उत्सुकतावश कि क्या एमेके, सम्पादक और मास्टर महज़ कहानी के काल्पनिक पात्र हैं, या वे जीते-जागते सचमुच के लोग थे। ज़ाहिर है, इस 'त्रिमूर्ति' के अस्तित्व से मैं इनकार नहीं करूँगा। किताब के बाहर भी कहानी का अपना यथार्थ रहता है, किन्तु किताब की कहानी 'असली' कहानी की पार्थिवता से मुक्त हो जाती है। शब्दों के जादू से खुद यथार्थ जादुई हो जाता है। सम्भव है, 'एमेके' इतनी आकर्षक नहीं थी, मास्टर इतना ख़राब नहीं था और सम्पादक इतना सिनिक नहीं था। गाथा के 'लघु विश्व' में हर चीज़ सम्पूर्णता-एबसोल्यूट की तरफ़ अग्रसर होती है, वरना वह गाथा नहीं रह पाती, वरना 'एमेके' का अस्तित्व ही न रहता, वरना यह यथार्थवाद होता, सत्य नहीं।

यह बहुत कम है, क्योंकि एक तो मैं अपने बारे में, या अपनी रचनाओं के बारे में ज्यादा लिखना पसन्द नहीं करता। दूसरे, जो इस भूमिका में मैंने लिखा है, महत्त्वपूर्ण बातें उसमें लगभग आ गई हैं और तीसरे, 'एमेके' की गाथा के बारे में पढ़ने की अपेक्षा खुद 'एमेके : एक गाथा' पढ़ना शायद ज्यादा बेहतर होगा।

जोसेफ़ श्कवोरेस्की

एमेके

कहीं कहानी घटती है, गुम हो जाती है और कोई उसे सुनाता नहीं, फिर कहीं आदमी जीता है, बेमानी तपती दोपहरों के बाद क्रिसमस के दिन आते हैं, आदमी मर जाता है और सिमिट्री में नये नाम की तख़्ती लगा दी जाती है। दो-तीन व्यक्ति–पति, भाई या माँ कुछ वर्षों तक उस कहानी की रोशनी अपने भीतर थामे रहते हैं और फिर वे भी मर जाते हैं। बच्चों के लिए वह घटना एक पुरानी फिल्म है, जिसमें हर चेहरा एक धुंधला धब्बा-सा दिखाई देता है। पोतों-पड़पोतों को तो उस घटना के बारे में कुछ मालूम ही नहीं होता और बाकी लोग उसे बहुत जल्द भुला देते हैं। आदमी के बाद कुछ भी नहीं रहता–न नाम, न स्मृति, न ख़ालीपन। कुछ भी नहीं।

किन्तु रिक्रियेशन सेण्टर की वह इमारत, जो शायद पहले कभी होटल या गेस्ट-हाउस या कस्बाती धर्मशाला रह चुकी होगी, आज भी ज्यों की त्यों खड़ी है। अपनी दीवारों के भीतर उसने दो व्यक्तियों की मूर्खतापूर्ण गाथा छिपा रखी है..... और शायद आज भी डांसिंग-हॉल या पिंगपांग के टेबल के आसपास उन दोनों की छायाएँ देखी जा सकती हैं, उन पुराने, उजाड़ मकानों के भीतर भटकती प्रेतात्माओं की तरह, जो अपने भीतर चन्द मृत

मानवीय विचारों को हमेशा के लिए कैद कर लेती हूं और जिन्हें अपनी जगह से सौ, पाँच सौ, हज़ार वर्ष या शायद चिरंतन काल तक नहीं हटाया जा सकता।

उन कमरों की ढलवाँ छत थी, खिड़कियाँ फर्श से बहुत ज्यादा ऊँची थीं और उनमें से बाहर की कोई चीज़ नहीं दिखाई देती थी, जब तक मेज़ को दीवार से सटाकर और उस पर खड़े होकर बाहर न झाँका जाए।

वह हमारी पहली रात थी, गर्म, अगस्त की रात। बाहर खिड़की के नीचे यासीन और लीपा सुदूर समुद्र की लहरों की तरह सरसरा रहे थे और भीतर घास और झींगुरों और लीपा के फूलों और सिगरेटों की रात्रि-गन्ध बह आती थी; और संगीत, जिप्सियों का संगीत, ग्लेन मिलर का 'इन द मूड' लड़खड़ाती जिप्सी लय के साथ और उसके बाद दीन्हा और उसके बाद सेन्ट लुइंस ब्लूस। ऑर्केस्ट्रा भी जिप्सियों का था, दो वायलिन, वास, सिम्बल लेकिन बूगी-बूगी नहीं, सिर्फ जिप्सियों की डोलती फड़कन, ब्लूस और वह भी जिप्सी लय के साथ।

और तब उस रात वह मास्टर मुझसे औरतों के बारे में बातचीत करने लगा। वह अंधेरे में बिस्तर पर बैठा था और खंखारती आवाज़ में बोल रहा था। औरतों के साथ मेरे किस किस्म के अनुभव रहे हैं, वह इस बारे में मेरे भेदों को कुरेदने की कोशिश कर रहा था। मैंने उससे कहा कि क्रिसमस से पहले मेरी शादी हो रही है। मैंने उससे यह भी कहा कि मैं एक विधवा से शादी कर रहा हूं.....विधवा का नाम इरेना था, किन्तु मन ही मन में मागरिता के बारे में सोच रहा था, जिसके पति ने मुझे धमकी दी थी कि अगर उसने मुझे दोबारा लिबन्य के इलाके या लिबन्य के मेले में मागरिता के साथ देखा, तो मेरी हड्डी-पसली बराबर कर देगा। मागरिता की नाक मिट्टी के उस बौने की नाक की तरह लाल-सुर्ख थी, जिसका पुतला उस रिक्रियेशन-सेण्टर या होटल या धर्मशाला (कुछ भी कह लीजिए) के वीरान, उजड़े बगीचे में खड़ा दिखाई देता था।

बाद में खुद मास्टर मुझे औरतों के बारे में ऐसे किस्से सुनाने लगा, जिनके हर शब्द से गन्दगी और अश्लीलता की दुर्गन्ध आती थी। लगता था जैसे उसके खरगोशी दिमाग और मुंह से बूंद-बूंद गलाज़त टपक रही हो। उसकी बातों ने मुझे काफी उद्विग्न-सा कर दिया। मुझे ऐसा महसूस हुआ, मानो उस गँवई-गाँव के मास्टर के रेगिस्तान से मृत्यु अपनी अँगुलियाँ उठाकर मुझे छू रही हो। उसकी उम्र पचास वर्ष की थी, एक पत्नी थी, तीन बच्चे थे।

और वह मुझसे औरतों, और स्कूल की जवान मास्टरनियों के साथ अपने यौन-सम्बन्धों के क़िस्से बघार रहा था। ये मास्टरनियाँ ऐसी लड़कियाँ थीं, जिन्हें अपनी माँ और घर-बार को छोड़कर सिर्फ़ दो फटे-पुराने सूटकेसों के साथ ईश्वर ही जाने कहाँ दूर पहाड़ों या सीमान्त प्रान्तों या गाँवों में शरण लेनी पड़ी थी। जहाँ सिनेमा या रेस्तराँ कुछ भी नहीं था, सिर्फ़ इक्का-दुक्का लकड़हारे, इने-गिने जिप्सी, या बाहर के ऐसे लोग, जिन्हें तरह-तरह की योजना या ख़्वाब या अपने भीतर की कचोटती आत्मा यहाँ खींच लाई थी।

महज़ एक उजड़ा हुआ गिरजा और राष्ट्रीय कमेटी का अध्यक्ष, जो जिन्दगी-भर खेतिहर मज़दूर रह चुका था और जिसके रक्त में उन अनेक पीढ़ियों का पैतृक विद्रोह भरा था, जो ख़ून-पसीना बहाकर जमीन जोतते थे, लेकिन जिनकी अपनी कोई जमीन नहीं थी, क्रान्ति के बाद ज़मीन की पुरानी भूख उन्हें यहाँ घसीट लाई थी, अब वे अपनी जमीन के मालिक थे, किन्तु उन्हें पहले ही की तरह जी तोड़कर काम करना पड़ता था।

इन लोगों के बीच यह मास्टर, जिसे वॉयलन बजाना आता था और जो कारेल हिनेक माखा, स्मेतना और फ़िबीरव जैसे शब्दों से परिचित था, और वे ऐसे शब्द थे जिनमें भोली लड़कियाँ अपने देशभक्ति के आदर्श ढूंढती थीं, यूं भी ट्रेनिंग-स्कूल की लड़कियाँ अपने अध्यापन के पेशे को सबसे अधिक कवितापूर्ण और आदर्शमय मानती हैं और इस मास्टर की अपनी पत्नी थी और (उन दिनों) उसके तीन बच्चे थे और उम्र चालीस वर्ष की थी

और वह कहता था कि वह उससे प्रेम करता है, मास्टराना ख़ुश दस्तख़तों में उसे पत्र और कविताएँ लिखता था (मास्टर के पास इस काम के लिए अज्ञात कवियों के प्रेम-पत्रों और प्रेम-कविताओं का एक संकलन था, जो हमेशा उसकी तात्कालिक ज़रूरतों को पूरा कर देता था); और सुबह स्कूल के सामने वह फूलों का गुच्छा लिए उसकी बाट जोहती थी और उसकी बातें सुनती थी, गाँव के पिछवाड़े चीड़ों के जंगल में लुक-छिपकर उससे मिला करती थी, जहाँ नंगी पहाड़ी के आर-पार ख़त्म होती गर्मियों की हवा चलती रहती और शहर धीरे-धीरे ठंडा होने लगता, गिरजे की बुर्जियाँ कटे-फटे, पीछे आकाश पर चुभती हुई-सी दिखाई देतीं, जहाँ पतझर के बादल लोहे के थैलों-से फैले रहते।

बाद में एक दिन वह सहमत हो गई और उसे अपने कमरे में ले गई और मास्टर ने अपनी बात जारी रखते हुए मुझसे कहा, "कमरे में मुझे लाकर कहने लगी कि यहाँ रोशनी बहुत है, कि उसे शर्म आ रही है, वहाँ उस कमरे में सिर्फ़ तार पर बिजली का नया बल्ब झूल रहा था, कोई शेड नहीं, कुछ भी नहीं और तब मैंने अपनी नीली पतलून उतारकर उस बल्ब पर लटका दी और कमरे में कुछ उस तरह का धुंधला-सा अंधेरा हो गया, जैसा लड़ाई के दिनों में ट्रामों में ब्लैक-आउट के समय कर दिया जाता था और फिर मैंने उसके साथ किया....."

वह मास्टर सचमुच मौत के नीचे दबा था और उसकी जिन्दगी की शून्यता मुझे घेरने लगी। मुझे लगा कि उसकी जिन्दगी उतनी ही शून्य और ख़ाली है, जितनी किसी चूहे की, या खेत के कव्वे की या उस वन-मानुस की जो चिड़ियाघर के कांटेदार पिंजरे में बन्द रहता है, टिन के फ़र्श पर इधर-उधर चहलकदमी करता है, नथुनों को फुलाकर हाँफता है, खाता है, संभोग करता है। एक हास्यास्पद जानवर जो हूबहू जानवरी कानूनों के अनुसार जिन्दगी बसर करता है, किन्तु यह मास्टर आदमी था, अध्यापकों की पुरानी परम्पराओं का उत्तराधिकारी जो एक ज़माने में अपने साथ किताबें,

संगीत, सौंदर्य और दर्शन इन उजड़े पहाड़ी प्रान्तों और गांवों में लाए थे, एक ऐसी औरत का पति जो किसी दूसरे क़स्बे में अकेली रहा करती थी, तीन बच्चों का बाप, जो खेत के चूहे या चिड़ियाघर के जानवर के कानूनों के मुताबिक़ ज़िन्दगी जी रहा था।

उस लड़की (मास्टरानी नहीं, यहाँ मैं उस लड़की की बात कर रहा हूं, जो पहले दिन डायनिंग-हॉल में हमारी मेज़ के पास ही बैठी थी और सांस्कृतिक कार्यकर्ता के भाषण को सुन रही थी) उस लड़की का डील-डौल एक नर्तकी का-सा था। लैम्प-पोस्ट की तरह पतली-छरहरी, लड़कों की-सी कमर और कंधे जैसे नाजुक शीशे के हों और वक्षस्थल, उन कलात्मक मूर्तियों के वक्षों की मानिन्द, जो युवा देह की सन्तुलित रूपरेखा को भंग नहीं करते, और बादामी मदिर आँखें, जले हुए चारकोल की तरह स्याह और जिप्सियों के से काले बाल, संगमरमर की तरह चमकीले।

उस दिन हम सब लोग पिकनिक पर गए थे और मैं उस लड़की के साथ चल रहा था। हम मारिया ताल नाम के एक पवित्र स्थान पर गए थे। बहुत अर्सा पहले समूचे आस्ट्रिया-हंगरी या शायद समूचे यूरोप के धार्मिक लोग यहाँ तीर्थयात्रा करने आते थे। एक जंगली घाटी, जो अब वीरान और उपेक्षित पड़ी थी।

उस लड़की के साथ चलते हुए मैं बहुत झेंप रहा था और बातचीत का हर विषय मुझे काफ़ी बेतुका और बेकार-सा जान पड़ रहा था। ऐसी मामूली चीज़ों के बारे में उससे बात करना नामुमकिन था, जहाँ शब्द कोई मानी नहीं रखते या उतने ही मानी रखते हैं, जितनी मुर्ग़ी की कुकड़ू-कूं, या पेड़ पर बैठे उल्लू की टिटियाहट, जो अपनी मादा का ध्यान आकर्षित करने की कोशिश करता है। मुझे लगा कि अगर उससे बातचीत हो सकती है, तो सिर्फ़ विचारों के बारे में। वह उन लड़कियों में नहीं थी, जिनसे कॉफ़ी हाउस में कोई आदमी निधड़क पूछ सकता है, 'मिस....क्या आप मेरे साथ नाचेंगी?' और बाद में इधर-उधर की बातें, ऑर्केस्ट्रा बहुत अच्छा बजा रहे हैं, आपकी

पोशाक बहुत सुन्दर है, क्या मैं आपका टेलीफोन-नम्बर जान सकता हूं? और दूसरे दिन उसे फ़ोन पर बुलाना, हो सकता है, वह न आए, हो सकता है वह आपसे मिलना पसन्द करे आप उसे दुबारा नाच के लिए आमंत्रित करें और फिर उससे ज़्यादा बातचीत करना जरूरी नहीं।

आपकी सफलता बस सिर्फ़ इस बात पर निर्भर करेगी कि आपके पास अपना कोई कमरा है, या कम-से-कम ऐसी भली-मानस लैंड-लेडी, जो अपना मुंह बन्द रखेगी और अगर कुछ भी नहीं, तो कम-से-कम इतने पैसे ज़रूर होने चाहिए कि आप होटल में एक रात के लिए दो कमरे किराए पर ले सकें, लेकिन यह लड़की बहुत गहरी थी और कहीं उसने आत्मा की गहराई में अपने जीवन की फ़िलासफ़ी छिपा रखी थी और उसके निकट आने के लिए उससे इस फ़िलासफ़ी के बारे में बात करना ज़रूरी था। मास्टर इस चीज़ को बिल्कुल नहीं समझ सका। उसे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वह अपने पुराने, घिसे-पिटे नुस्ख़े आज़माने लगा। उसे हँसाने के लिए वह कभी ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने लगता। बीच-बीच में कभी कोई फड़कता हुआ अश्लील शब्द इस्तेमाल करता। डांसिंग-हॉल में बातचीत करने के जो फूहड़ फार्मूले सिखाए जाते हैं, उन्हें अंधाधुंध दुहराता, गाँवों और क़स्बों की रुचिहीन ठिठोलियाँ या ऐसे बंधे-बंधाए काइयाँ प्रश्न, जो हमेशा लड़कियों से बंधे-बंधाए उत्तरों या वाक्यों की अपेक्षा रखते हैं, कुछ-कुछ पादरी और मिनिस्टर के डायलॉगों की तरह, एक ऐसी बात-चीत, जिसके पीछे हमेशा ही कुछ ख़ास क़िस्म के सेक्सुअल संकेत और मंत्र छिपे रहते हैं।

किन्तु उस लड़की ने कभी कोई घिसा-पिटा जवाब नहीं दिया। वह चुप रहती थी और सिर्फ हेय ('हाँ' की जगह वह हेय कहती थी। वह हंगेरियन थी और चेक नहीं जानती थी। एक ख़ास तरह की भाषा बोलती थी, जिसमें हंगेरियन, स्लोवाक और जिप्सी भाषाओं के शब्द मिले-जुले रहते थे) या नहीं में जवाब देती थी।

शीघ्र ही मास्टर के सब करतब और फ़ार्मूले चुक गए। वह चुप हो गया।

सड़क के किनारे से घास का एक तिनका उखाड़कर अपने मुंह में दबा लिया और उसे दाँतों के बीच चबाता हुआ चुपचाप आगे-आगे चलने लगा।

इतने में ही एक बड़ी-सी मक्खी हमें रास्ते पर उड़ती दिखाई दी और तब मैंने उस लड़की से पूछा कि क्या उसे मालूम है कि एक ज़माने में इन मक्खियों के लगभग पौने मीटर लम्बे पंख हुआ करते थे।

उसने विस्मय-भरे स्वर में कहा कि शायद यह सम्भव नहीं हो सकता।

और मैं उसे प्राणिशास्त्र के सिद्धान्तों और डार्विन के बारे में और दुनिया के विकास के बारे में, प्रकृति की अंधी और अनिवार्य प्रक्रियाओं के बारे में समझाने लगा, जहाँ ताक़तवर जीव कमज़ोर जीवों को अपना आहार बनाते हैं और कुछ जानवर सिर्फ़ इसलिए पैदा होते हैं कि अपना खाद्य ढूंढ सकें। बच्चे जनने के तुरन्त बाद वे मर जाते हैं, उनके अस्तित्व का कोई और उद्देश्य नहीं। दरअसल 'उद्देश्य' महज़ आदमी के मस्तिष्क की उपज है, वरना जहाँ तक प्रकृति का सवाल है, वह तो कारण-कार्य की लौह ज़ंजीर के अलावा कुछ भी नहीं। उसमें किसी रंगीन, अर्थसंगत रहस्यमय जीवन-दर्शन के सूत्रों को ढूंढ़ना बेकार है।

उसने मेरी बात सुनी और कुछ देर बाद कहा कि मेरी बात में सच्चाई नहीं है, कि प्रकृति का कोई उद्देश्य अवश्य है और ज़िन्दगी का भी......

'कैसा उद्देश्य?' मैंने पूछा।

और उसने कहा 'ईश्वर ।'

और तब मास्टर ने कहा, "अरे छोड़ो भी," और फिर उसने लड़की से कहा, "क्या बियर पीने की इच्छा नहीं है? बेहद उमस है, जैसी गर्मी की छुट्टियों में होती है।"

किन्तु उसने सिर हिलाकर मना कर दिया।

और तब मैंने पूछा, "क्या आप ईश्वर में विश्वास करती हैं?"

"हाँ, करती हूं।" उसने कहा।

और मैंने कहा, "ईश्वर नहीं है......अगर होता, तो बहुत सुन्दर बात होती, लेकिन वह है नहीं।"

"आप अभी उसके काबिल नहीं बने," उसने कहा, "आप अभी सिर्फ दैहिक जीव हैं, अभी मुकम्मिल नहीं हैं, लेकिन एक दिन आप उसके काबिल बन जाएंगे।"

"मैं नास्तिक हूं।" मैंने कहा।

"मैं भी नास्तिक थी," उसने कहा, "लेकिन मैं समझ गई। मैं जान गई, सत्य क्या होता है।"

"कैसे जान गईं?" मैंने तनिक व्यंग्यात्मक स्वर में पूछा, क्योंकि वह नर्तकी की तरह सुडौल-छरहरी थी और ऐसी लड़कियां चाहे गिरजे में घुटने टेकती हों, क्रॉस बनाती हों, ईश्वर में विश्वास नहीं करतीं। प्रश्न विश्वास करने-न करने का उठता ही नहीं, क्योंकि वे उसके बारे में ज्यादा सोचती नहीं। उनके लिए वह सिर्फ अन्धविश्वास है।

"जब मेरा विवाह हुआ....." लड़की ने कहा।

और मास्टर जो अब एक नया तिनका चबाता हुआ गुमसुम चल रहा था, सहसा अपनी विमूढ़ निद्रा से जागकर बोला, "अच्छा, आप विवाहित हैं?"

"नहीं," उसने कहा, "मैं विधवा हूं, लेकिन विवाह के बाद मैं ईश्वर में विश्वास करना सीख गई।"

"आपके पति धार्मिक पुरुष रहे होंगे?" मैंने पूछा।

उसने सिर हिलाया, "नहीं, वह बहुत दैहिक क़िस्म का आदमी था। उसमें आध्यात्मिक कुछ भी नहीं था।"

"अच्छा, तो आप जवान विधवा हैं, क्यों?" मास्टर ने कहा, "दुबारा शादी करने का ख्याल है?"

"नहीं।" एमेके ने कहा, उसका नाम एमेके था, हंगेरियन जो थी। उसका पिता डाकख़ाने में क्लर्क था। दक्षिणी स्लोवाकिया पर जर्मनों का कब्ज़ा हो जाने के बाद उसका तबादला कोशित्से शहर में हो गया, जहाँ उसकी नियुक्ति पोस्ट-मास्टर की जगह हुई। ज़िन्दगी-भर जिस सुखी-सम्पन्न कैरियर की तमन्ना थी, वह आखिर पूरी हुई और वह एक संभ्रांत, भद्र व्यक्ति की तरह रहने लगा। एक पियानो, बढ़िया स्कूल में लड़की का दाख़िला, घर में फ़्रेंच पढ़ाने के लिए एक ट्यूटर।

"मैं अब कभी शादी नहीं करूँगी।" उसने कहा

"आपने ऐसा निर्णय क्यों लिया?" मैंने पूछा।

"क्योंकि अब मैं जान गई हूँ कि ज़िन्दगी का लक्ष्य बहुत ऊँचा है," उसने कहा, "आपने अभी मुझसे कहा था कि समूची दुनिया का विकास महज़ कार्य और कारण का अर्थहीन चक्कर है और उसका कोई उद्देश्य नहीं। आपको सिर्फ़ ऐसा लगता है, सच यह नहीं है। मैं उसमें उद्देश्य देखती हूं, जो आपको दिखाई नहीं देता।"

"कैसा उद्देश्य?" मैंने पूछा।

"सब कुछ ईश्वर की दिशा में अग्रसर है," उसने कहा, "उसमें लीन होने के लिए......हर जीवित प्राणी का यही उद्देश्य है; और कुछ नहीं।"

आस्तिकों और नास्तिकों के बीच कोई समझौता नहीं है। उनके बीच एक लोहे की दीवार खड़ी है, जिस पर हर तर्क टकराकर लंगड़ाने लगता है। मैंने उसे समझाने की भरसक कोशिश की कि हर चीज़ में 'उद्देश्य' खोजने की आदत मनुष्य में है, जो वह प्रकृति के अन्धे और अर्थहीन चलन पर थोपने की चेष्टा करता है। इस मनुष्य-केन्द्रित-एन्थ्रोपोमोरफ़िक दर्शन से ही आप इस नतीजे पर पहुंची हैं कि हमारे हर कार्य का कोई उद्देश्य है। हम भोजन पकाते हैं, ताकि हम उसे खा सकें, हम रिक्रियेशन-सेन्टर में आए हैं, ताकि अपनी थकान मिटा सकें, हम रोज़ दाँत मांजते हैं, ताकि वे खराब

न हों और हम अपना तर्क प्रकृति पर भी थोपने की कोशिश करते हैं, क्योंकि उसमें किसी 'उद्देश्य' का अभाव हमें खटकता है।

लेकिन वह मेरे सब तर्कों और प्रमाणों पर सिर्फ मुस्कराती रही और मेरे भीतर एक लाचार-सा ग़ुस्सा भर आया (वह खराब ग़ुस्सा नहीं था, सिर्फ़ बेबसी-भरा ग़ुस्सा था कि मैं उसे इतने स्पष्ट सत्यों के बारे में भी सहमत नहीं करवा सकता। उसमें एक अजीब क़िस्म की क्षमता या अक्षमता थी, तर्क से परे जो हर सबूत को ठुकरा देती थी)।

एक अलौकिक-सी मुस्कान के साथ बहुत कोमल और शान्त स्वर में उसने सिर्फ़ इतना कहा, "आप कुछ नहीं, सिर्फ़ दैहिक प्राणी हैं, आप अभी अपूर्ण हैं।"

इस पर मैंने उससे पूछा कि क्या वह मेरे प्रति घृणा का हिक़ारत का भाव नहीं रखती, क्योंकि मैं नास्तिक हूं।

और तब उसने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, मैं आप पर सिर्फ़ अफ़सोस करती हूं।"

"क्यों?" मैंने पूछा।

"क्योंकि पूर्ण बनने के लिए आपको अभी अनेक ज़िन्दगियाँ भुगतनी होंगी......."

"अनेक ज़िन्दगियाँ?" मैंने पूछा।

"हाँ," एमेके ने कहा, "क्योंकि सत्य को ठीक-ठीक पहचानने के लिए आपको आध्यात्मिक आदमी बनना होगा।"

"मिस, आप दूसरे जन्म में विश्वास करती हैं?" मास्टर ने पूछा।

"आप कुछ भी कह लीजिए, शब्दों से फ़र्क़ नहीं पड़ता, ईश्वर भी मत कहिए......लेकिन सत्य को जानना जरूरी है।" उसने कहा।

इस बीच हम 'मारिया ताल' की पहाड़ी-घाटी में पहुंच चुके थे, जहाँ सफ़ेद गिरजा खड़ा था। चौड़ी सड़क से दोनों ओर तीर्थयात्रियों की उजाड़ झोंपड़ियाँ दिखाई देती थीं, चंदन की लकड़ी की सुगंध आ रही थी। सड़क के किनारे ख़ाली ठेले थे, जिन पर किसी ज़माने में मेले के दिनों में चीज़ों की भरमार दिखाई देती थी—धार्मिक चित्र, पवित्र रोटी से बनाए गए हृदय-बिम्ब, लकड़ी के फ्रेम में झूलते हुए काले-पीले और लाल गुलाब के फूल, ज़ंजीरों पर लटकती हुई सोने की मैडोनाएँ, पवित्र जल के बर्तन, दिन के बने सलीब, ईसा मसीह की तस्वीर। किसानों की झोपड़ियों की दीवारें ऐसी चीज़ों से भरी दिखाई देतीं, 'मारिया ताल' की वर्जिन मेरी की तस्वीर, पूजा की मोमबत्तियाँ और दूसरी सामग्री।

बग़ल में ही तुर्की शहद की दुकानें थीं, जहां एक आदमी सिर पर फ़ैज़ टोपी पहने और गले में सफ़ेद एप्रन लटकाए बड़ी दक्षता से चाकू से चिपचिपे, मीठे शहद को काट-काट कर तराजू में तोलता था और कुछ दूर पर कपड़ों के स्टॉल, सूती जुराबों, काँच के आभूषणों और धार्मिक चित्रों की दुकानें....। और ग्रामीण लोगों की भीड़ जो काले कपड़े और काली टोपियाँ पहनकर वहाँ आते थे और लाल रूमालों से अपने चेहरे का पसीना पोंछते थे। लम्बा रास्ता पार करने के कारण उनके काले फ़ीतों वाले जूते धूल में सने होते थे और इतवार की सफेद पोशाक में सजी-बनी बूढ़ी दादियाँ और

थके माँदे बच्चे और थके-माँदे नवविवाहित जोड़े, जो अपने वैवाहिक जीवन की सफलता या संतान पाने की कामना से यहाँ प्रार्थना करने आते थे और बूढ़े-बूढ़ियाँ, जिनकी एकमात्र अभिलाषा यह थी कि शुभ घड़ी में उनकी मृत्यु आ सके।

गिरजे से ऑर्गन संगीत की ध्वनि और तीर्थयात्रियों का गायन-स्वर सुनाई देता था और फिर वह रास्ता ऊपर जंगलों की तरफ़ मुड़ जाता था, जिसके दोनों तरफ़ सफ़ेद छोटे-छोटे चेपल थे, जहाँ लकड़ी के बने ऑल्टरों पर सन्तों की जीवन झाँकियाँ चित्रित की गई थीं, किन्तु जिनके रंग अब फीके और धूमिल पड़ गए थे, पहाड़ की कड़ी हवाओं और बारिश ने उन्हें जर्जरित कर डाला था।

इन्हीं में से एक चेपल की सीढ़ियों पर हमारे 'रिक्रियेशन-सेण्टर' के सांस्कृतिक गाइड खड़े हो गए। उन्होंने निकर पहन रखी थी और उनकी नंगी टाँगों के घने बाल मकड़ी के जालों से दिखाई देते थे। (इन गाइड महोदय ने पहली शाम हमारे सांस्कृतिक कार्यक्रम के बारे में रिपोर्ट पढ़ी थी, किन्तु दूसरे दिन सारी शाम शराब में धुत रहे, तीसरे दिन बिस्तर पर जमे रहे और अन्तिम दिन विदाई की शाम फिर पीने में जुट गए और मदहोश होकर ऑर्केस्ट्रा के मंच के नीचे लुढ़क गए और सेक्सोफ़ोन से निकलती थूक की बौछार उन पर गिरती रही।) यह गाइड महोदय चेपल की सीढ़ी पर खड़े होकर उस तीर्थ-स्थान का महत्त्व हमें समझाने लगे और उनके मुंह से पहला शब्द निकलने की देर नहीं थी कि मैं तुरन्त जान गया कि वह बिल्कुल कोरे हैं......कैथोलिक चर्च के नियमों, धार्मिक अनुष्ठानों, मंत्रों और परम्पराओं के बारे में उनका अज्ञान भयंकर था। बाइबल और चर्च के इतिहास की बात तो बहुत दूर रही, वह इस बात को लेकर मज़ाक़ करने लगा कि पहले यहाँ 'मारिया ताल' बाँझ औरतें और नपुंसक पुरुष प्रार्थना करने आते थे।

और फिर वह एकाएक गम्भीर हो गया और धर्म के बारे में भाषण देने लगा। एंगल्स के विचारों का इतना भीषण, कुत्सित और भोंडा संस्करण

देखकर मैं दंग रह गया। भूसे-भरे दिमागों में विज्ञान का कचरा भरने की कोशिश, जिसके लिए सांस्कृतिक गाइड हर महीने बारह सौ क्राउन वेतन पाता था। निरक्षर लोगों में विज्ञान का प्रचार करने के लिए नहीं, बल्कि स्वाभाविक रूप से समझदार और बुद्धिमान आदमियों को शिक्षित करने के लिए उसे यह वेतन दिया जाता था और उसके एवज़ में यह शख़्स विज्ञान के नाम पर आधे-पौने सत्यों के नुस्ख़े ऐसे लोगों में बाँटा करता था, जो परजीवी-जोंकों से भी बदतर थे और जिनकी आंखों में सत्य का कौड़ी-भर भी मूल्य न था। विज्ञान की जगह महज़ विज्ञान का भ्रम, विज्ञान का उपहास, अपमान, कलंक, सत्य नहीं, बल्कि सिर्फ़ छिछोरापन, स्थूल-जड़ता, हृदयहीनता–ऐसी सख़्त खाल, जिसमें उस तड़पते स्वप्न को ट्रेजिक, तड़पती कविता नहीं समा सकती, जो कम्युनिस्ट दुनिया में भविष्य का स्वप्न है, एक ऐसा विवेक जिसका खाने-पीने के उस भोगी जीवन से कोई नाता नहीं, जो शारीरिक काम से कतराता हो और टूरिस्ट गाइडों के अधकचरे, घिसे-पिटे वाक्यों पर जीता हो।

तीर्थयात्रा के धूपीले दिनों की कविता, जहाँ बच्चों के काग़ज़ी बिगुलों का नाद गिरजे से बाहर तिरते ऑर्गन-संगीत के सुरों से टकराता है और चीड़ की पत्तियों की ख़ुशबू गिरजे की धूपबत्तियों की गन्ध में घुल जाती है। प्रार्थना में गाते हुए छोटे लड़के, जो लाल या हरे कॉलर पहने रहते हैं और टिमटिमाती मोमबत्तियाँ, बाहर जंगल की छायाएं और रोशनी, कोयल की गूंजती पुकार, भीतर गिरजे में सुनहरे चोग़े में पादरी का धीरे-धीरे चलना, उसके उठे हुए हाथों में जगमगाता हुआ पवित्र, पारदर्शी पात्र, जिसके बीचो-बीच एक सफेद चमकीला दायरा, जो प्राचीन यूनानियों के सबसे मुकम्मिल फ़ॉर्म का स्मरण कराता था और स्कार्फ़ में ढंके हुए औरतों के सिरों और ग्रामीण बूढ़ों के सफ़ेद बालों के ऊपर-ऊपर चलता हुआ वह पात्र, धूपबत्तियों का धुआँ उड़ाता, सितम्बर की धूप और जंगल की छाया में तपा हुआ मनुष्य की शाश्वत आकांक्षा और उम्मीद का प्रतीक-सा जो यहाँ, इस

धरती पर जन्म लेगा, किन्तु जिसकी कल्पना उस सहज आस्था के बिना नहीं की जा सकती, जो हर साधारण मनुष्य के भीतर है– आशा, आस्था, मुहब्बत जैसी चीज़ें, जो उस पियक्कड़, उजड्ड भखुए सांस्कृतिक गाइड के मस्तिष्क से बाहर थीं।

उस शाम होटल के बड़े रूम में मास्टर ने मुझसे कहा, "मुझे लगता है, औरतों के मामले में तुम काफ़ी भोंदू हो.....कोई ऐसे बात की जाती है? ईश्वर और प्रकृति के नियम और इस तरह की अल्लम-गल्लम! यार अगर यही हाल रहा, तो कहे देता हूं, हफ़्ता गुज़र जाएगा और वह तुम्हारे पास भी नहीं फटकेगी!"

बाद में उसने मुझे सब कुछ बताया। एमेके ने। मास्टर सुबह तड़के ही उठ जाया करता था और उसकी खिड़की के नीचे चहलकदमी किया करता था।

जब कभी वह खिड़की के सामने दिखाई देती, मास्टर अपने पीले दाँत निपोरकर उससे फूहड़ मज़ाक़ करने लगता। कहता, "अरे ज़रा सुनो, अपनी यह सफ़ेद जुर्राबें खिड़की से मत दिखाओ।"

वह हर रात अपनी जुर्राबें धोकर खिड़की के तार पर सुखाने डाल देती थी। जब मास्टर खिड़की के नीचे से अभिवादन करता, तो वह बहुत ठंडे स्वर में उसका उत्तर देती और तब मास्टर कहता, "जंगल की हवा जैसी कोई चीज़ नहीं, क्या आप मेरे साथ अपने फेफड़े ताज़ा करने नहीं आ रहीं?"

वह सिर्फ़ अपना सिर हिला देती और कहती "नहीं।"

और तब मास्टर अकेले ही घूमने निकल जाता। दिन-भर उसके इर्द-गिर्द चक्कर लगाता, लोलुप चेहरे पर आंखें चमकती रहतीं, दिमाग में इने-गिने विचार चक्कर लगाते रहते, विचार उतने नहीं, जितने बातचीत करने के कुछ बने-बनाए फॉर्मूले। बार-बार वह उसके पास जाकर इन फार्मूलों का प्रयोग करता और जब वे कारगर साबित न होते तो लौट आता।

और दुबारा उसकी आँखें चमकने लगतीं और दूर कहीं कोने में खड़ा होकर ललचाई नज़रों में उसे देखता रहता और फिर चक्कर लगाने लगता, कुछ उसी तरह से, जैसे कोई घमंडी मुर्ग़ा पकड़ के बाहर किसी पराई मुर्ग़ी के इर्द-गिर्द मंडराता रहता है।

उसने मुझे अपनी कहानी सुनाई थी–अपनी समूची गाथा। उसकी यह गाथा कैलण्डर के पन्ने की तरह थी। उन आत्म-कथाओं की तरह, जो वेश्याएँ अपने ग्राहकों को सुनाती हैं, किसी राजघराने में अपनी जवानी के दिनों के बारे में, फिर पतन, फिर ग़रीबी के दिन और बाद में किस तरह अपने शरीर को बेचने तक की नौबत आ पहुँचती है।

लड़ाई ख़त्म होने के बाद वे कोशित्से में ही रहे थे, लेकिन चूंकि उसका पिता युद्ध के दौरान जर्मन-शासन का पक्षपाती था, क्लर्क और फ़ासिस्ट, इसलिए युद्ध के बाद वह बिल्कुल तबाह हो गया, पैसे-पैसे का मोहताज, जीने का कोई सहारा नहीं, ऊपर से बुढ़ापे और बीमारी का बोझ, जिसके कारण वह सड़क बनाने या जंगल में लकड़ी काटने का काम भी नहीं कर सकता था।

माँ की कमर झुक चली थी और वह किसी भी शारीरिक काम के अयोग्य थीं, और वह जवान थी, हंगेरियन हाई स्कूल में पढ़ती थी, किन्तु लड़ाई के बाद स्कूल टूट गया और तब उन दिनों वह आदमी आया था, खेत और अंगूर के बग़ीचे का मालिक, ब्रातीस्लावा में उसका एक होटल भी था, अच्छा-खासा मालदार, पैंतालीस वर्ष की उम्र और वह उससे विवाह करने को राज़ी हो गई, ताकि किसी तरह अपने परिवार को भूख, ग़रीबी और मृत्यु से बचा सके।

वह काफी धौंसी किस्म का आदमी था, कमीना और संकीर्ण। किसी में विश्वास नहीं करता था, न ईश्वर में, न लोकतन्त्र में, न मानवीय शिष्टाचार में, किसी में भी नहीं, बस, सिर्फ अपने में।

उसे पुत्र पाने की लालसा थी, जो उसके बग़ीचे, खेत और होटल का उत्तराधिकारी बन सके, किन्तु उसमें किसी तरह के जातीय पूर्वाग्रह नहीं थे और उसे इस बात पर कोई आपत्ति नहीं थी कि वह हंगेरियन है। जिस दिन घर में लड़की का जन्म हुआ, उस दिन वह बाहर जाकर शराब में धुत पड़ा रहा और पूरे एक सप्ताह तक उससे नहीं बोला। बाद में जब कभी ज़्यादा पी लेता, तो उस पर हाथ उठाने में भी नहीं चूकता था।

एक रात वह नशे में चूर होकर घर लौटा। उसके मुंह से भयानक दुर्गन्ध छूट रही थी और उसने ज़बरदस्ती उसे मजबूर किया, जो शायद उसके लिए 'आनन्द' की चीज़ रही हो, किन्तु एमेके के लिए वह घोर यातना और शर्म का अनुभव था। उस दिन उसने साँड की गर्दन और बोझिल साँसों वाले अपने 'पति' को सही-सही पहचाना। उस क्षण उसने सत्य को भी पहली बार पहचाना।

उन दिनों वह एक दूसरे आदमी के सम्पर्क में आई, जो उनके बग़ीचे में काम करता था। उसे तपेदिक की बीमारी थी और बाद में वह मर गया। वह उसे अनेक पुस्तकें पढ़ने के लिए दिया करता था–ईश्वर की खोज के बारे में, आध्यात्मिक शक्ति के विकास के बारे में, मानसिक लोक और मृत्यु के परे जीवन के बारे में। तब वह धीरे-धीरे समझने लगी कि इस दुनिया में आदमी का एकमात्र कर्त्तव्य यह है कि वह अपने को बुराई के धब्बों से मुक्त कर सके और बुराई यह भौतिक अस्तित्व है और उसे इस भौतिकता से, देह से, देह की मांगों से मुक्त होना है और उसका लक्ष्य आत्मा में है, लेकिन दरअसल वहां भी नहीं, वह सिर्फ एक मंजिल है, दैहिक जीवन से ऊपर, किन्तु अन्तिम लक्ष्य ईश्वर है, ईश्वर में पूरी तरह निमग्न हो जाना। इस असीम आनन्द की अनुभूति में अपना 'मैं' ख़त्म हो जाता है और तब एक रहस्यमय पवित्र प्रेम और साधुत्व का जन्म होता है।

बाद में उसके पति की मृत्यु हो गई। फरवरी की घटनाओं के बाद सरकार ने उससे उसका बग़ीचा और होटल छीन लिया और उसे जेलख़ाने में डाल दिया, किन्तु वह जेल से भाग निकला। उसका इरादा डेन्यूब पार करके आस्ट्रिया भाग जाने का था, किन्तु जब वह नदी पार कर रहा था, उसे गोली से मार दिया गया।

बाद में एमेके को एक दफ्तर में काम मिल गया। अब वह अपनी बच्ची के साथ कोशित्से में रहती है और उसके पालन-पोषण में ही अपना समय गुज़ार देती है। माँ-बाप दोनों ही मर चुके हैं और उसकी सिर्फ़ एक आकांक्षा है कि अपनी बच्ची को भी उस सत्य की ओर उन्मुख करा सके, जो खुद उसने अपने जीवन में पहचाना है।

बाद में उसने मुझे कुछ किताबें पढ़ने को दीं, जिनकी चर्चा उसने मुझसे की थी। उनमें से कुछ किसी मनोवैज्ञानिक, थियोसोफ़िकल जर्नल के अंक थे, जो अलग-अलग जिल्दों में बंधे थे। उसमें मैंने एक लेख पढ़ा, जिसमें तावीज़ बाँधने के फ़ायदों का लम्बा विवरण दिया गया था। किस तरह आदमी उसकी सहायता से अपने को जोड़ों के दर्द और हैमरेज (रक्त नाड़ी का फूट जाना) जैसी बीमारियों से बचा सकता है।

मैंने उससे पूछा कि क्या यह अजीब बात नहीं है कि वे लोग, जो आत्मा

को लेकर इतनी लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं, हमेशा अपनी देह को लेकर इतने चिन्तामग्न रहते हैं, क्योंकि इन थियोसोफ़िकल लेखों में तीन चौथाई ऐसे हैं, जिनमें नाना प्रकार की बीमारियों से बचने के तरीक़े सुझाए गए हैं और क्या वह इन सबमें विश्वास करती है ?

उसने उत्तर दिया कि जीवन-विकास की हर मंजिल में उन कानूनों का पालन करना ज़रूरी है, जो ईश्वर ने दिए हैं, और उसी तरह दैहिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए, दैहिक अस्तित्व के क़ानूनों का पालन करना आवश्यक है।

"लेकिन इन तावीज़ों के बारे में क्या कहोगी? मैंने उन्हें आज़माया नहीं, लेकिन उन पर विश्वास करना असंभव है," मैंने कहा, "मैं अभी अपूर्ण हूं और सत्य से कतराता हूं।"

"सब लोग शुरू में सत्य से कतराते हैं, किन्तु कभी-न-कभी उसे जरूर पहचान लेते हैं, क्योंकि ईश्वर की दया असीम है।" उसने कहा। और इन शब्दों को कहते हुए उसकी आँखों में एक अजीब-सी पीड़ा भावना की चमक उभर आई, मानो वह डर रही हो कि मैं कोई चीज़ उससे छीनने की कोशिश कर रहा हूं, उसकी दृढ़ आस्था को, जो उसके पास है और जिसके बिना वह जी नहीं सकती, जिसके बिना वह अपने दुखी, जर्जरित वैधव्य का बोझ, ज़िन्दगी और मृत्यु का भार नहीं ढो सकती। उसकी आँखों में कुछ वैसा ही भाव उभर आया, जैसा किसी बनैले जन्तु के बदहवास चेहरे पर सिमट आता है, जब वह अपनी निरीह आँखों से आदमी से याचना करता है कि उसे और अधिक परेशान न करे, उसे अपनी शक्ति से मुक्त करके जंगल की स्वतन्त्रता में खुला छोड़ दे।

बाद में मास्टर ने पूछा कि मैं उस लड़की के साथ कितनी दूर जा चुका हूं।

मुझे मालूम था कि वह मेरे पास है, मेरे पास वैसी ही है, जैसे वह बनैला

जानवर, एक अजीब शक्ति में बंधी हुई एक ऐसा मोह-पाश, जिसमें कभी-कभार पुरुष और स्त्री दोनों ही बँध जाते हैं, बिना कोई चेष्टा किए, बिना किसी आकांक्षा के, अनायास, महज सहानुभूति और एक अजाना-सा 'श्रद्धा भाव' उन्हें एक-दूसरे के पास खींच लाता है।

किन्तु उस समय मैंने अपने रिश्ते में यह तथ्य उस ढंग से स्वीकार नहीं किया, जैसा मैं दूसरी लड़कियों के सम्पर्क में अक्सर स्वीकार लेता था, जैसे मार्गेरिता के साथ जो बहुत सीधी-सादी, पेंचहीन और कामुक किस्म की लड़की थी, किन्तु एमेके के साथ मुझे लगता था, जैसे कहीं किसी अदृश्य बिन्दु पर हमारी नसें आपस में रगड़ गई हों, और उसकी भभकती ज्वाला ने एक ड्रामे को जन्म दिया है, एक अजीब किस्म की पूर्ति, जो उस हताशा-भरी मरीचिका को तोड़ देगी, जिसने उसकी सुडौल, छरहरी देह और आकर्षक चेहरे और छोटे-छोटे वक्षों और मानव-सृजन की अपार शक्ति को एक बदहवास अस्तित्व में बदल दिया था, और वह एक भूलभुलैया में फड़फड़ाता अस्तित्व बनकर रह गया था।

उस 'रिक्रियेशन-सेण्टर' में हमारी छुट्टियाँ खत्म होने से दो दिन पहले बारिश की झड़ी लग गई। पिकनिक-पार्टी के लोग दिन-भर पिंग-पाँग या ताश खेलने में वक़्त काटते या डायनिंग-रूम में बैठे गप्पें हाँकते या कभी-कभार किसी को पियानो बजाने के लिए विवश करते।

सांस्कृतिक गाइड ने किसी तरह अपने होश-हवास संभालकर कुछ लोगों को इकट्ठा किया और एक 'खेल' शुरू किया, जिसे 'फ़्रांसीसी डाक' कहते हैं। किन्तु एक बूढ़े दम्पति के अलावा कोई भी उस खेल में भाग लेने को तैयार नहीं हुआ। इन सज्जन की पद्रिवित्से में 'रेडीमेड' कपड़ों की दुकान थी। उन्होंने बिरजिस टाइप की पतलून पहन रखी थी, जिसके भीतर उनकी फूली-फैली तोंद दिखाई देती थी। उनकी पत्नी भी काफ़ी स्थूलकाय थी। उम्र शायद पचास वर्ष रही होगी, किन्तु जरा-जरा-सी बात पर आश्चर्य से चीख़ने-चिल्लाने की आदत कुछ वैसी ही थी, जैसी अठारह वर्ष की किशोरियाँ झूले में ऊपर-नीचे झूलते हुए डर और आनन्द से चिल्लाती हैं।

इन महिला का चेहरा भोजन के समय हमेशा खिल जाता था। भूख या लालच या पेटूपन के कारण नहीं, बल्कि भोजन ही एक ऐसी चीज़ थी, जिसे वह जिन्दगी में ठीक-ठीक समझ पाई थीं, वरना उनका जीवन महज़ एक धुंधला पर्दा था, पीढ़ी-दर-पीढ़ी आती परम्पराओं की सुरक्षित रोशनियों में

झिलमिलाता हुआ, बचपन में माँ के उपदेश, फिर कुछ बड़े होकर नाच-गाना सीखना, केवल उन लोगों के सम्पर्क में आना, जिन्हें माता-पिता ने बड़ी हिफ़ाजत से उसके लिए चुना है, फिर सगाई और विवाह, इतवार के दिन गिरजे जाना।

किन्तु यदि कोई उससे 'धर्म' के बुनियादी विचारों के बारे में प्रश्न पूछता, तो वह बग़लें झाँकने लगती, सिर्फ़ गिरजे में हाज़री बजाना ही उसके लिए धर्म था। वहाँ वह नियमित रूप से जाती थी, अपने बेसुरे स्वर में धार्मिक भजन गाती थी, घुटने टेककर प्रार्थना करती थी, पवित्र जल में अंगुलियाँ भिगोकर सलीब का निशान बनाती थी, मोमबत्तियाँ जलाती थी और स्वर्गीय माँ की स्मृति में पूजा-पाठ करवाती थी। बस, यही उसका 'धर्म' था।

दो या तीन प्रसव और फिर चौका-चूल्हा, जो उसके लिए सुरक्षा का द्वीप था और जहाँ वह एक दक्ष कलाकार में बदल जाती थी, हर रस, गन्ध और स्वाद को उतनी ही मर्मज्ञता से पहचानती थी, जिस तरह कोई कुशल वॉयलनिस्ट एक सुर को दूसरे सुर से अलग करके पहचान लेता है, मस्तिष्क से उतना नहीं, जितना सिर्फ़ 'महसूस' करने की शक्ति से। एक ऐसी चमत्कारपूर्ण शक्ति, जो दूसरे लोगों के पास नहीं होती और न कभी हो सकती है, क्योंकि वह पाँच या सात वर्ष रसोई में माँ द्वारा दी गई ट्रेनिंग से प्राप्त नहीं होती, बल्कि वह एक तरह का अलौकिक वरदान है, अमरत्व का एक अंश, जो उन्हें अपनी औसत योग्यता और धुंधले मस्तिष्क के अतिरिक्त प्राप्त होता है। हाँ, ऐसे लोगों का मस्तिष्क काफी धुंधला होता है, जिसमें केवल कुछ अपंग विचार धीमी गति से चक्कर लगाते हैं और उनका दिल महज़ पानी में भीगा चर्बी का एक लोंदा होता है, जो किसी भी झूठ या गुस्से के काबिल नहीं, जिसमें केवल जन्तुगत, परजीवी प्रेम होता है—बच्चे के प्रति, पति के प्रति, परिवार के प्रति, लोगों के प्रति, जीवन के प्रति और अन्त में मृत्यु के आगे शान्त समर्पण, मृत्यु जो उनके धुंधले जीवन में सुरक्षा की अन्तिम रोशनी है।

इस दम्पति के अलावा वहाँ एक और अधेड़ अविवाहित महिला थीं, जो ज़िन्दगी-भर दर्ज़ीगीरी का पेशा करती रही थीं। प्राग के एक ग़रीब इलाके शिशकोव में उनका घर था और पहली बार अपनी चारदीवारी के बाहर छुट्टियाँ बिताने यहाँ आई थीं। पुरुषों के कपड़े सीने-पिरोने के काम में वह सिद्धहस्त थीं, क्योंकि पूरी जिन्दगी में इसके अलावा उन्होंने कोई दूसरा काम नहीं किया था।

यहाँ 'रिक्रियेशन-सेण्टर' में उन्होंने पूरा हफ़्ता कभी बैठकर, कभी खड़े होकर, कभी इधर-उधर चहलकदमी करके काट डाला था। वह यहाँ सचमुच काफी अटपटा-सा महसूस कर रही थीं। उन्हें कुछ समझ में नहीं आता था कि क्या करें, किससे बात करें, किस बारे में बात करें, क्योंकि वह यहाँ किसी से भी परिचित नहीं थीं और यों भी पुरुषों की कमीजों के अलावा उन्हें ज़िन्दगी में किसी भी पुरुष का परिचय या प्रेम प्राप्त नहीं हुआ था और उन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी क़मीजों के गद्य और कुंवारी औरतों के सपनों की आदिम कविता के बीच गुज़ार डाली थीं।

वहाँ एक गडरिया भी था, जो तीन दिनों तक लम्बी चुटिया वाली स्लोवाक लड़की का पीछा करता रहा था, किन्तु उसके हाथ कुछ भी नहीं लगा था, क्योंकि वह स्लोवाक लड़की एक कर्मचारी के प्रति आकर्षित थी, जो लड़ाई के दिनों में आर०ए०एफ़० में काम कर चुके थे। यह कर्मचारी महोदय भी शादीशुदा बाल-बच्चेदार आदमी थे, किन्तु लड़कियों को पटाने की जिस कला में मास्टर जितना ही नादान और भोंदू था, यह महोदय उस कला में उतने ही परिपक्व और पारंगत जान पड़ते थे। गडरिये ने खूब चढ़ा रखी थी और चेहरे पर कठोर, उद्धत भाव लिये मनोरंजन-कक्ष के एक कोने में वह चुपचाप अकेला बैठा था। सांस्कृतिक गाइड ने जब अपने 'फ्रांसीसी डाक' वाले खेल के लिए उसे बुलाया, तो उसने कोई आपत्ति नहीं की, हालाँकि उसकी उद्धत, आक्रोशमयी भावमुद्रा ज्यों की त्यों बनी रही।

अन्त में हमारे बीच एक ख़ामोश-टाइप आदमी भी था, जिसके बारे में निश्चित रूप से किसी को कुछ मालूम नहीं था। वह शायद किसी फैक्टरी में कारीगर था, किन्तु अपने सम्बन्ध में उसने कभी किसी से एक शब्द भी नहीं कहा था। उसे यहाँ एक हफ़्ता गुज़ारने के लिए फ़ैक्टरी की तरफ से बहुत सस्ते दामों पर या शायद मुफ़्त ही मनोरंजन और विश्राम की सुविधा मिली थी। उसे देखकर लगता था, मानो इस सुविधा का फायदा उठाना उसके लिए एक तरह से अपनी ड्यूटी पूरी करना है, क्योंकि कभी किसी ने उसके चेहरे पर ख़ुशी या आनन्द की चमक नहीं देखी।

वास्तव में वहाँ आने वाले सब लोग इस गलतफहमी का शिकार जान पड़ते थे कि किसी ऐसे ढंग में समय गुजारा जा सकता है, जिसके वे अभी तक आदी नहीं बने थे। ऐसे लोग जिन्होंने जिन्दगी में अपने काम के अलावा कभी कुछ नहीं जाना और यह काम उनके लिए उत्तरोत्तर भोजन और हवा की तरह ही अनिवार्य बन गया था। ऐसे लोगों को अब उन पुराने जमाने के रईसों की जीवन-पद्धति में पटक दिया गया था, जिन्होंने कभी काम का अर्थ जाना ही न था, धनी कर्मचारियों की बीवियाँ, फौजी अफ़सर, डॉक्टर, व्यापारी, शेयरों के मालिक, रईसों के लाडले बेटे, सुखी-सम्पन्न घरानों की टेनिस-पोशाक में इधर-उधर फुदकती लड़कियाँ, दूसरे शब्दों में ऐसे भद्र लोग, जिनके लिए अवकाश का हर क्षण आत्मपूर्ति का साधन था और मनोरंजन एक ऐसा पेशा था, जिसकी रग-रग से वे परिचित थे। भला रिक्रियेशन-सेण्टर में आने वाले ये लोग अपनी ज़िन्दगी में ऐसा सहज मनोरंजन कहां से ला पाते ?

किन्तु दूसरी तरफ़ हमारे सांस्कृतिक गाइड बेचारे इन लोगों के लिए जोड़-तोड़कर कुछ ऐसा ही सामूहिक 'मनोरंजन' जुटाने की कोशिश कर रहे थे। उनकी आँखों में यह एक ईमानदार पेशा था, जिसे निभाने का ढोंग उनकी जेब में हर महीने बारह सौ क्राउन खींच लाता था।

मास्टर उस कमरे में था, जहाँ पिंग-पाँग की टेबल थी। वह बार-बार

अपनी मनहूस आँखों से हरी टेबल और शीशे के पार्टीशन के परे उस अँधेरे कोने की ओर देख लेता था, जहाँ एक बेंच पर मैं एमेके के साथ बैठा था। बाद में वह फ़ैक्टरी के कारीगर के साथ पिंग-पाँग का मैच खेलने लगा। वह एक मँजे हुए खिलाड़ी की अदा से बड़ी फुर्ती से सर्विस फेंकता, हालाँकि अक्सर गेंद जाल से टकराकर लौट आती, किन्तु कभी-कभार जब वह सफल हो जाता, तो अपनी गिजगिजी आँखों से एमेके की ओर इस ग़रज से जरूर देख लेता कि वह उसका खेल देख रही है या नहीं, फिर वह स्विमिंग-पूल पर घूमने वाले लोफ़रों या केबिन के छोकरों की बनावटी अदा से मेज के नीचे से गेंद उठाता, चेहरे पर एक विजेता की गर्वीली-मुद्रा सिमट आती। अपने उस चश्माधारी विपक्षी की ओर हिक़ारत से देखता, जो बेचारा उत्साह और जोश में खेल रहा था। खेल के लिए, प्रभाव जमाने के लिए नहीं, किन्तु जो अभी कच्चा था और बार-बार गेंद को कमरे के कोनों में फेंक देता था।

मैं एमेके के साथ कमरे के उस अकेले शान्त कोने में बैठा था, जहाँ अंधेरा था। मैं ग्रॉग (रम और चाय) पी रहा था और वह चीन की चाय, बिना रम के, क्योंकि आदमी को मद्य-सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि मद्यसेवन आदमी को दैहिकता की निम्नतम सीढ़ी पर गिरा देता है, उसे दुबारा जानवर में बदल देता है, जो वह पहले कभी था।

उसने मुझे एक ऐसे उपाय के बारे में बताया, जिसके इस्तेमाल से इस बुरी आदत से छुटकारा पाया जा सकता है। ऐसे पेड़ होते हैं, जो आदमी की बीमारियों को खींच लेते हैं, बस अपनी छाती पर छोटी-सी खरोंच करके लहू की बूंद निकाल लो और फिर उसे किसी पेड़ की छाल पर रगड़ दो, तब आदमी और पेड़ के बीच एक अत्यधिक कोमल, पारदर्शी रेशे की ज़ंजीर बँध जाएगी, और आदमी आजीवन उस पेड़ से जुड़ा रहेगा, उसी तरह से, जैसे वह हमेशा उन चीज़ों से जुड़ा रहता है, जो उसके शरीर से निकलती हैं, झरे हुए बाल, साँसें, काटे हुए नाखून

और तब उसकी बीमारी उस रेशे की मदद से पेड़ पर उतर आएगी और आदमी की जगह वह पेड़ अब उस बीमारी से लड़ेगा। कभी-कभी यह पेड़ सूखकर महज़ ठूँठ रह जाता है, लेकिन आदमी स्वस्थ होकर अपनी ज़िन्दगी के शेष दिन आनन्द से गुज़ारता है।

फिर वह मुझे प्रेत आत्माओं के दुष्प्रभावों के बारे में बताने लगी, जिनसे केवल पवित्र जल और प्रार्थनाओं के द्वारा ही छुटकारा पाया जा सकता है। उसने मुझे काले जादू और शैतान की शक्तियों के बारे में भी बहुत कुछ बताया, जिन्हें हर वह आदमी प्राप्त कर सकता है, जिसमें इतना दुस्साहस है कि वह एक ऐसे दायरे के बीच खड़ा हो सके, जिसमें सर्वशक्तिमान के सात गुप्त नाम लिखे हों और जो नरक की प्रार्थना-पुस्तक के पीछे और आगे मुड़कर पाप-दूषित प्रार्थनाएँ पढ़ सके।

वह देर तक मुझे भेड़िए के भेष में आदमियों, ख़ून चूसने वाले जोंको, प्रेतात्माओं से अभिशप्त मकानों और चुड़ैलों के रास-रंग के बारे में बताती रही और मुझे लगा, जैसे उसकी आत्मा उन भयावह लोकों में विचर रही है, जिन पर हम विश्वास नहीं करते, कभी-कभी मज़ाक़ भी उड़ाते हैं, किन्तु एक बार सुन लेने के बाद हमारे भीतर हमेशा के लिए डर, दहशत और आतंक की बूँद जम जाती है।

वह मुझे भूल गई और मैं ख़ामोश बैठा रहा। वह देर तक बोलती रही। बारिश के धुंधले, सलेटी आलोक में उसकी आँखें ज्वरग्रस्त, अस्वस्थ, अस्वाभाविक उत्साह में चमक रही थीं और मैं ख़ामोश बैठा रहा और उसकी आँखों को देखता रहा और उसे भी अहसास हुआ कि मैं बराबर उसकी ओर देख रहा हूं और तब सहसा उसकी आँखों की वह ज्वरग्रस्त चमक बुझ गई और मेरे लिए भी वह भयावह क्षण बीत गया, जब मुझे लगा था, मानो किसी जादू के एक अजीब मोह-पाश में मैं धीरे-धीरे जकड़ता जा रहा हूं।

मैं व्यंग्यात्मक भाव से मुस्कराया और मैंने कहा, "ईश्वर के लिए यह मत कहिए कि आप ख़ुद काले जादू की ताक़त हासिल करना चाहती हैं? आख़िर यह बुराई की जड़ है और आप अच्छाई की तरफ़ जाना चाहती हैं।"

उसने आंखें झुका लीं, मुझसे कहा, "अब नहीं चाहती, लेकिन पहले कभी मैं ज़रूर चाहती थी।"

"कब?" मैंने पूछा।

"उन दिनों, जब मैंने देखा कि मैं और अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकूँगी। मुझे लगा, जैसे ईश्वर ने मेरी तरफ से अपने कान बहरे कर लिए हैं मानो वह मुझसे किसी कारणवश रुष्ट है। तब मेरा ध्यान इन 'काली शक्तियों' की तरफ गया। मैंने सोचा शायद वे मेरी मदद कर सकेंगी, मुझे ईश्वर से छुटकारा दिलवा सकेंगी।"

"और क्या आपने मदद मांगी? क्या आपने चॉक से दो दायरे खींचे?" मैंने पूछा।

"नहीं", उसने कहा, "ईश्वर ने मुझे बचा लिया। अब मैं जान गई हूं कि भगवान हर क्षण आदमी की परीक्षा लेता है और बहुत से लोग उसकी परीक्षा से कतराकर मुंह मोड़ लेते हैं।"

"लेकिन वह क्यों परीक्षा लेता है?" मैंने पूछा।

"यह जाँचने के लिए कि क्या आदमी उसका वरदान पाने के लायक है, या नहीं, ताकि वह अपनी दैहिक वासनाओं से छुटकारा पा सके, यह जांचने के लिए कि क्या वह तैयार है।" उसने कहा।

"लेकिन ऐसा क्यों?" मैंने पूछा, "आख़िर आदमी ने ईश्वर से प्रार्थना नहीं की थी कि वह उसकी रचना करे, फिर ईश्वर को क्या अधिकार है कि उसकी परीक्षा ले ?"

"ईश्वर को सब चीज़ों का अधिकार है," उसने कहा।

"क्योंकि ईश्वर प्रेम है।" उसने आगे कहा।

"क्या वह दयावान भी है?" मैंने पूछा।

"हाँ।" उसने कहा।

"फिर उसने आदमी की रचना क्यों की?" मैंने पूछा।

"क्योंकि वह उससे प्रेम करता है।" उसने कहा।

"लेकिन मैं पूछता हूं, उसने आदमी को बनाया क्यों ? क्यों उसे इस दुःख-दर्द की दुनिया में भेजा ?"

"उसकी परीक्षा करने के लिए, यह जाँचने के लिए कि क्या वह उसकी दया पाने के योग्य है," उसने कहा, "लेकिन इस तरह आदमी को तड़पाने में तुक क्या है?"

मैंने पूछा, "अगर ईश्वर सचमुच उससे प्रेम करता था, तो उसने आराम से उसे अकेला क्यों नहीं छोड़ दिया ? और अगर उसे आदमी की रचना करनी ही थी, तो शुरू से ही उसे सम्पूर्ण और मुकम्मिल क्यों नहीं बनाया, ताकि वह सर्वोच्च आनन्द का अधिकारी हो सकता ? आख़िर देह और आत्मा के बीच इस शहादत-भरी भटकन का अर्थ क्या है ?"

"आप अभी अपूर्ण हैं," उसने कहा, "आप सत्य से कतराते हैं।"

"नहीं कतराता," मैंने कहा, "लेकिन मैं सबूत चाहता हूं, और अगर सबूत नहीं, तो कम-से-कम कोई अर्थसंगत तर्क, कोई लॉजिक।" मैंने कहा।

"लॉजिक ईश्वर की देन है, आदमी उसे नहीं बनाता।" उसने कहा।

"अगर उसकी देन है, तो वह ख़ुद उसका पालन क्यों नहीं करता?" मैंने पूछा।

"ज़रूरी नहीं, वह उसका पालन करे," उसने कहा, "एक दिन आप ज़रूर समझ जाएँगे। सब लोग एक दिन समझ जाएँगे और तब उन्हें अपने

पापों से मुक्ति मिल जाएगी। एक दिन ऐसा आएगा, जब इस दुनिया में पाप रहेगा ही नहीं, किन्तु मेहरबानी करके अब आप इस बारे में बहस मत कीजिए।" उसने याचना-भरे स्वर में कहा और उसकी आँखों में एक बार फिर उस बनैले जन्तु का भाव छलक आया, जो हर क्षण इस बात से डरता रहता है कि कोई उसकी अमूल्य बनैली स्वच्छन्दता को उससे छीन न ले।

मैं चुप हो गया और पियानो के आगे जाकर बैठ गया। एमेके ने पियानो के पिछले पट्टे पर सिर टिका लिया और तब मैं 'रिवर साइड ब्लूज़' (River side Blues) की धुन बजाने लगा, जो उसे अच्छी लगी और फिर मैं सेण्ट जेम्स इन्फ़मेरी (St. James Infimary) की धुन पर गाने लगा और मास्टर पिंग-पाँग के कमरे के अँधेरे-उजाले से बाहर आकर एमेके के पीछे बैठ गया और मैं गाता रहा—

सेण्ट जेकब के अस्पताल में
जाता हूं मैं
अपनी औरत के पास
एक सफेद मेज़ के आगे
बैठी है वह,
सुन्दर, पीली, उदास

पाँच नॉटों की यह धुन, जो कभी मनुष्य की असीम उदासी से उत्पन्न हुई थी, सिर्फ़ सिसकियों में ही डूब सकती है। एक-दूसरे से जुदा होते हुए दो व्यक्तियों का शोक धीरे-धीरे एमेके के हृदय को भी मथने लगा और उसने कहा, "बहुत सुन्दर गीत है।"

"गीत कैसा, ये नीग्रो-ब्लूज हैं।" मैंने कहा।

और एमेके ने कहा, "हाँ, नीग्रो लोग बहुत आध्यात्मिक होते हैं। मैंने रेकॉर्डों पर उन्हें धार्मिक-गीत गाते हुए सुना है। हमारे दफ़्तर में एक क्लर्क

के पास अमरीकी रेकॉर्ड हैं।"

"हां, ये नीग्रो लोग काफ़ी इन्द्रियभोगी क़िस्म के लम्पट होते हैं," मैंने कहा, "लेकिन संगीत के प्रति बेहद संवेदनशील होते हैं।"

"आपको सिर्फ़ ऐसा लगता है, लेकिन असल में वे बहुत आध्यात्मिक होते हैं।" उसने कहा और मैं बराबर पियानो बजाता रहा और गाता रहा।

और जब मैं ख़त्म कर चुका, मास्टर ने कहा, "अरे यार, कोई बुलबुल जैसी फड़कती धुन बजाओ, जिस पर कुछ नाच-वाच सकें हम यहाँ दिल बहलाने आए हैं, या बोर होने......? क्यों मिस, आपका क्या ख्याल है?"

और इस पर एमेके मुस्करा उठी और खुद मेरी जगह पियानो के सामने बैठ गई और अपनी सधी हुई, सहज रूप से लययुक्त अंगुलियों से धीरे-धीरे पियानो बजाने लगी और एक गीत की धुन ऊपर उठी, जिसमें हंगेरियन संगीत 'चरदाश' का सुदूर स्पर्श छिपा था, जो उतना ही दोषहीन था, जितने नीग्रो गीतों के ब्लू नॉट्स होते हैं और उस धुन के साथ-साथ उसका स्वर उठने लगा, चरवाहों का-सा सीधा-समतल स्वर, जो एक स्तर पर चलता है, जिसे न तेज किया जा सकता है, न धीमा, किन्तु जो आदिम ढंग से सुन्दर, निश्चित और समतल होता है।

और तब वह एक हंगेरियन गीत गाने लगी, सख्त और मीठा। ऐसा गीत, जो न उदास था, न प्रसन्न, सिर्फ़ बेहद निराशा-पूर्ण, और गाते-गाते उसका चेहरा सुर्ख़ हो आया और मुझे लगा कि उस गीत का चॉक से खींचे गए दायरों के काले जादू से दूर का भी रिश्ता नहीं। वह रेगिस्तान में उस चरवाहे की पुकार है, जो जन्त्रों-मन्त्रों के बारे में कुछ नहीं जानता, जो प्रकृति की गोद में जीता है, दूध और दही पर गुज़ारा करता है, बाँस की झोंपड़ी में सोता है, जिसके कुछ अन्धविश्वास ज़रूर हैं, किन्तु जिन्हें वह किसी अच्छी या बुरी शक्ति के साथ नहीं जोड़ता और कभी-कभी ज़िन्दगी में उसे एक अनिर्वचनीय-सी चाहना घेर लेती है और तब वह अपनी मीठी और अक्खड़

भाषा में निराशा और चाहना से भरा साफ और समतल गीत गाने लगता है, फिर उसकी जीवन-संगिनी नए चरवाहों को जन्म देती है और वह पूर्ववत् अपनी ज़िन्दगी के दिन दूध और मक्खन और शाम को आग की लपटों, बाँस की झोंपड़ी में खालों की गन्ध के बीच गुज़ार देता है।

और तब मुझे सहसा इस बात का अहसास हुआ कि इस मास्टर के कुरुचिपूर्ण वाक्य ने जादू की तरह एमेके को आध्यात्मिक दुनिया की उलझनों से मुक्त करा दिया था और यह गीत उस महान 'दैहिकता' से उत्पन्न हुआ था, जो एमेके के भीतर मौजूद है, किन्तु मैं यह भी जानता था कि यह सिर्फ़ मास्टर के वाक्य की करामात थी, खुद मास्टर की नहीं।

और सहसा एमेके के ड्रामे का चरम बिन्दु मेरी आँखों के सामने चला आया।

उसके जीवन में पापात्मा का प्रतीक वह पैंतालीस वर्ष का आदमी था। होटल और बग़ीचे का मालिक, जिसने अपनी क्रूरता से उसे खतरनाक छायाओं के लोक में अवास्तविक कल्पनाओं की भयानक दुनिया में धकेल दिया था और अब वह उसमें सर्व शक्तिमान, पुण्य, प्रेम, आध्यात्मिक, अदैहिक, पवित्र प्रेम को खोज रही थी, किन्तु मुझे लगा कि थोड़ा-सा सच्चा प्यार अगर उसे मिले, तो अंधविश्वासों, मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक प्रतीकों की यह उलटी दुनिया, जो वह अपने भीतर पाल रही थी, खुद उसके लिए अजीब और अजनबी बन जाएगी, या दूसरे शब्दों में, ज़रा-सा मानवीय प्यार उसकी आत्मा को, जो अब तक सिर के बल उलटी खड़ी थी, उसे अपने पैरों पर सीधा खड़ा कर देगी।

और तब मैंने सोचा कि जिस 'अच्छाई और विराट शक्ति' को वह खोज रही है, वह मैं स्वयं हो सकता हूं, या शायद अब तक उसकी आँखों में हो चुका हूँ, हालाँकि वह अभी शायद खुद इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर पाएगी, शायद वह अभी इस बारे में खुद कुछ जानती भी नहीं, किन्तु शायद उसके अवचेतन के अजाने, गहरे कोटर में मैंने वह 'जगह' पा ली है, जिसे

वह अब तक ढूंढ़ रही थी और इस 'जगह' पर खड़ा होकर मैं उसकी गाथा, उसके जीवन-प्रवाह को बदल सकता हूं, मैं सचमुच सर्वोच्च शक्ति, सृजनकर्त्ता बन सकता हूँ......धुँधले पागलपन की तरफ भागती हुई सुन्दर छायाओं से एक ठोस व्यक्ति का निर्माण कर सकता हूँ, उसका मस्तिष्क अभी इस काबिल है, हालाँकि ज्यादा देर नहीं रहेगा कि उसे धूमिल कल्पनाओं की अंधी गली से खींचकर दुबारा ठोस वस्तुओं की पटरी पर लाया जा सके और अब इसे ज्यादा देर नहीं टाला जा सकता, क्योंकि किसी भी समय वह उन बादलों के धुँधलके में खो सकता है, जो ठोस धरती से उठते हैं, किन्तु बाद में अपने नियमों के अनुसार अजानी, ख़तरनाक ऊँचाइयों में उड़ जाते हैं, जहाँ उनका इस ठोस धरती के नियमों-कानूनों से कोई सम्बन्ध नहीं, जहाँ उनका अपना सत्य है, जिसे झूठ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वह एक बिल्कुल दूसरी दुनिया है और हमारी दुनिया और उसके बीच कोई रिश्ता, कोई बोलचाल नहीं और उस दुनिया में बन्द होकर वह लड़की से औरत बनेगी और औरत से बूढ़ी झुर्रियों से लदा चेहरा, व्यर्थ में मुरझाई हुई जननेन्द्रियाँ और उसकी आत्मा धीरे-धीरे एक ठंडे, गोथिक गलियारे में बहती बूढ़ी अभिशप्त आवाज़ों में खो जाएगी, एक गलियारा, जो इस दुनिया को दूसरी दुनिया से जोड़ता है, जिसके बारे में हम कुछ नहीं जानते और जो शायद कुछ भी नहीं है।

"वाह, कमाल कर दिया।" जब मास्टर ने ताली बजाते हुए कहा, "अब कोई 'चरदाश' की धुन बजाइए।"

वह धीरे से मुस्कराई और फिर सचमुच 'चरदाश' बजाने लगी, और उसकी समूची देह उसकी मदमाती लय में हिलने लगी। आँखों में एक गहरी-सी चमक उभर आई किन्तु वह वैसी ज्वरग्रस्त चमक की छाया न थी, जो कुछ देर पहले मुझसे बातें करते हुए उसकी आँखों में सुलग आई थी।

मास्टर पियानो से जरा दूर जाकर नाचने लगा। उसके पैर बिना किसी लय-ताल की परवाह किए इधर-उधर पड़ रहे थे और फिर एमेके गाने

लगी। इस बार उसका गीत सुनते ही हॉल के दूसरे लोग, जो अब तक 'फ्रांसीसी डाक,' वाले खेल में भाग ले रहे थे या पिंग-पां। खेल रहे थे, हमारे इर्द-गिर्द दायरा बनाकर खड़े हो गए। मुझे फिर पियानो के आगे बैठना पड़ा और चन्द लोकप्रिय फ़रमायशी धुनें बजाने लगा।

कुछ लड़के-लड़कियों के जोड़े डांसिंग-फ्लोर पर नाचने लगे, जिनमें मास्टर भी एमेके के साथ शामिल हो गया। एमेके बिल्कुल बदल गई थी, मानो किसी तितली के अचानक पंख निकल आए हों, अब वह सचमुच की एमेके लग रही थी, कोई स्वप्न-गाथा नहीं, बल्कि जीवन्त और असली, क्योंकि उस आदिम और अनजान मास्टर ने अनजान और आदिम तरीके से उसके गहरे, रहस्यमय दिल का पता लगा लिया था, जो उसके भविष्य का रास्ता था, किन्तु इस रास्ते और भविष्य का मास्टर की नियति से कोई लेना-देना नहीं था, क्योंकि मास्टर को उसके भविष्य से कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसकी दिलचस्पी सिर्फ़ इस सप्ताह के चन्द मनोरंजन-भरे दिनों तक सीमित थी, ग़लीज़ सुख की चन्द ग़लीज़, फोहस स्मृतियों तक। मैं उस रास्ते पर जा सकता था, किन्तु मैं अपनी जिन्दगी के रास्ते पर इतना दूर जा चुका था कि बिना सोचे-समझे किसी दूसरे के भविष्य की तरफ़ अपने को मोड़ पाना बहुत आसान नहीं जान पड़ता था।

पियानो के 'की-बोर्ड' पर मैं अपनी अँगुलियाँ घुमाता रहा, एक धुन के बाद दूसरी धुन और मेरी आँखें बराबर उस पर टिकी थीं और तब सहसा मास्टर की तरह मेरे दिल में भी उसकी सुगठित छरहरी देह के लिए अजीब-सी चाहना उमड़ने लगी, उसके वक्षस्थल के लिए जो उसकी सुडौलता को जरा भी भंग नहीं करते थे।

किन्तु मुझे यह भी मालूम था कि सारी चीज़ बहुत, ज़्यादा पेचीदा है। उसका आसान-सा नुस्ख़ा ज़रूर था (मास्टर बेझिझक कह देता, इसके हम बिस्तर हो जाओ, सारी समस्या सुलझ जाएगी)। मैं यह भी जानता था कि कुछ भी हो, यह नुस्ख़ा अपनी जगह सही था, किन्तु उस लक्ष्य, उस दैहिक

कर्म पर पहुँचने से पहले एक ऐसे स्टेज को पार करना बहुत जरूरी था, जो अपने में बहुत कोमल, बहुत अधिक पेचीदा था और जिसमें मास्टर के उथले, बने-बनाए फार्मूले किसी काम के नहीं थे।

किन्तु यहाँ प्रश्न शारीरिक माँग का नहीं था, बल्कि उस दायित्व का था, जो उसकी शर्त है और जो उसका साक्षी भी है, उस आपसी सम्बन्ध का साक्षी, जिसे दो व्यक्ति जीवन और मृत्यु के खिलाफ बनाते हैं, एक सृजनात्मक कर्म का प्रतीक, जिसे मैं क्रियान्वित कर सकता था, किन्तु मैं उनके लिए इच्छुक नहीं था।

ऐसे कर्म के लिए ज़िन्दगी के अनेक वर्ष त्यागने की जुर्रत होनी चाहिए, और आदमी जानता है कि कोई भी सम्मोहन, चाहे वह कितना ताकतवर क्यों न हो, अन्त में महज़ अतीत के हाशिये पर सिकुड़ जाता है और बचा रहता है सिर्फ वर्तमान, दैनिक चर्या के मामूली दिन।

नहीं, मैं उसके लिए इच्छुक नहीं था, मैं इच्छुक था महज़ उसकी देह के लिए, एक प्रीतिकर एडवेंचर के लिए, जो मनोरंजन के दूसरे साधनों से अलग होगा, नारी पाँवों के लिए, जंघाओं के लिए, गोद के लिए. . . मैं जानता था कि अगर मैं सिर्फ यही पाता हूँ, और उसकी सारी जिन्दगी को अलग छोड़ देता हूँ, तो यह उसे नष्ट कर देने के लिए काफ़ी होगा।

और मैं एमेके को देखने लगा, जो मास्टर के साथ नाच रही थी और तब मास्टर के प्रति मेरा दिल घृणा से जलने लगा, वह जो आदमी न होकर महज़ सहवासों का 'कुल जोड़' था। और स्वयं एमेके के प्रति मेरे मन में आदिम किस्म का मर्दाना गुस्सा भड़क उठा, क्योंकि वह उसके साथ नाच रही थी और मुझे लगा कि वह वैसी नहीं है, जैसा कुछ देर पहले मैंने उसके बारे में सोचा था और यद्यपि मैं उसकी निराशा-भरी कुंठाओं की दुनिया से सहमत नहीं था, उस क्षण मुझे वह दुनिया मास्टर की दुनिया से कहीं बेहतर जान पड़ रही थी।

इसलिए जब उस शाम हम भोजन कक्ष जाने के लिए सीढ़ियाँ उतर रहे थे, मैंने व्यंग्यात्मक लहज़े में उससे कहा कि मास्टर के साथ उसका अच्छा-खासा समय बीत रहा है और आख़िर वह भी तो काफी निचले किस्म का दैहिक आदमी है।

और उसने बहुत भोले अन्दाज में उत्तर दिया, "मैं जानती हूँ, वह बहुत देहवादी शख़्स है, मुझे उस पर काफ़ी अफ़सोस है। हमें ऐसे लोगों से सहानुभूति करनी चाहिए, जो उस जैसे गए-गुजरे हैं।"

तब मैंने उससे पूछा कि क्या उसे मुझ पर भी अफ़सोस होता है, क्योंकि मैं भी आख़िर देहवादी हूँ।

"आप उतने नहीं हैं," उसने कहा, "आपमें कम-से-कम आध्यात्मिक चीज़ों के बारे में दिलचस्पी है, उसमें तो बिल्कुल नहीं है।"

अब दुबारा सहसा वह बदल गई थी। कुछ देर पहले वह जैसी मास्टर के साथ दिखाई देती थी, उसका लेश-मात्र चिह्न भी अब दिखाई नहीं देता था। पुनः किसी दूसरी दुनिया का बादल दुबारा उसके चेहरे पर सिमट आया था। अपने विचारों में खोई एक भिक्षुक-सी वह खाने की मेज़ के सामने बैठी थी। मास्टर की ललचाई निगाहों के प्रति सर्वथा उदासीन, न ही उसे गडरिये

की लुब्ध दृष्टि का ध्यान था, जो अब तक एक उत्पीड़ित प्रेमी की हैसियत से अकेले में समय गुज़ार रहा था, किन्तु अब लगता था, जैसे इतना अकेलापन उसकी शक्ति के बाहर है।

भोजन के बाद करीब साढ़े आठ बजे हमारे सांस्कृतिक गाइड ने घोषणा की, कि कुछ छोटी, डॉकुमेन्ट्री फिल्में दिखाई जाएंगी।

एमेके अपने कमरे में चली गई और मैं बगीचे में टहलने चला आया। वह ऊबड़-खाबड़ बगीचा था, बासी हवा और उमस का वातावरण। मैं एक टूटे-फूटे बारिश में भीगे बेंच पर बैठ गया। मेरे सामने बौने की मूर्ति खड़ी थी, बारिश में भीगा चेहरा और मुँह में दबी पाइप कुछ-कुछ वैसी पाइप की तरह, जो मेरे दादा पिया करते थे। उनके बाग़ में भी एक बौने की मूर्ति थी और लकड़ी का छोटा-सा क़िला, जिसके चारों तरफ खाई थी और जिसकी खिड़कियों पर दादा ने सचमुच का शीशा लगाया था और हर वसन्त में वह क़िले की दीवारों पर लाल रंग की वार्निश से पुताई किया करते थे। उनकी उम्र सत्तर से ऊपर थी, किन्तु क़िले की कल्पना उन्हें उसी तरह उत्तेजित करती थी, जितनी मुझे, जब मैं छोटा था।

किन्तु उस रात बगीचे में भी दादा के क़िले की स्मृति मुझे एकाएक झिंझोड़ गई, छोटा और नन्हा किला, किन्तु जो मेरी आँखों में बहुत वास्तविक था, जिसकी सीढ़ियों से कभी शायद बादशाह का जुलूस निकलेगा, जिसमें लोग गुलीवर कथा की मानिन्द अंगुल-भर लम्बे होंगे। शीशे की खिड़कियों के पीछे कमरे, शयन-कक्ष और अतिथियों के आदर-सत्कार के लिए लम्बे हॉल, जो उतने ही वास्तविक थे जितना वह क़िला।

मेरी आँखें मिट्टी के बने उस बौने के सुखी, विलासप्रिय, कटे-फटे चेहरे पर टिक गईं और तब सहसा मुझे लगा कि यह मैं हूँ। तीस वर्ष की उम्र वाला कुँवारा शख़्स, जिसकी मागरेता जैसी एक विवाहित औरत के साथ साठ-गाँठ है। एक ऐसा आदमी जो किसी चीज में विश्वास नहीं करता, किसी चीज़ को गंभीरता से नहीं लेता, जिसके लिए दुनिया, ज़िन्दगी,

राजनीति, यश और सुख सब कुछ महज़ ताश के पत्ते हैं। जो अकेला है, और यह अकेलापन मजबूरी के कारण नहीं है, बल्कि जो अनिवार्य है, एक सफल और स्वच्छ आदमी, जिसे अच्छा वेतन मिलता है, जिसे अब कोई चीज़ आश्चर्य में नहीं डाल सकती, जो हर चीज़ के रहस्य से परिचित है, एक ऐसी बढ़ती हुई उम्र जब देह की परेशानियाँ शुरू हो जाती हैं।

यह उम्र का वह हिस्सा है, जब आदमी अन्तिम क्षण में विवाह कर लेता है, ताकि उसे अपने बच्चों का बड़प्पन देखने का मौका मिल सके, जब वे दुनिया की चीजों को समझने-बूझने लगते हैं। और एमेके ? वह अभी सुन्दर थी, जवान थी, हंगेरियन थी, जिसके एक बच्चा था... एक नया-ताजा व्यक्तित्व कुछ-कुछ अजाना-सा और फिर भी काफ़ी वयस्क, उम्र लगभग अट्ठाईस वर्ष की, एक बच्चे के साथ रहती थी, विदेशी, हंगेरियन लड़की, बहुत तेज़ बुद्धि नहीं, आध्यात्मिक झक्कीपन से लदी हुई, पता नहीं कैसी पवित्र, लेकिन पवित्र, हर चीज़ को ठुकराने वाली, दूसरों को अपनी आस्था की तरफ़ खींचने में प्रयत्नशील। संक्षेप में, एक आदर्श चीज़, जिसके साथ मन बहलाने के लिए मजे से कोई एडवेंचर किया जा सकता है, इससे अधिक कुछ नहीं इससे अधिक कुछ भी नहीं।

किन्तु वनैले जानवर की वह भयानक निगाहें, दुनिया के विरुद्ध अपने को बचाने की वह आत्मघाती छटपटाहट, गहरी धुंध में भरे वह रहस्यवादी अन्धविश्वास, उनका ख्याल आते ही मेरी देह में एक ठंडी-सी कंपन दौड़ गई।

उसके साथ समस्या जीवन और मृत्यु की थी, इतनी आसान नहीं कि कुछ घिसी-पिटी आकर्षक बातें किसी ऐसे चुने हुए क्षण में, जब गर्मियों की शाम अजानी-सी चाहना ऊपर तिर आती है और छुट्टियों का बहका-सा मूड, सब मिलकर एक ऐसी भीगी-सी मनःस्थिति पैदा कर देते हैं, जिसमें सब डर और वर्जनाएँ घुल जाती हैं और हर लड़की अपने को समर्पित करने को तैयार हो जाती है, नहीं उसके साथ ऐसा नहीं था, उसके लिए यह एक बहुत

बड़ी चीज़ थी, समूची जिन्दगी की, प्यार की, आत्मबलिदान की अथवा रहस्य की, धुंध में मृत्यु की, आधी रात के सफेद दायरों की, जो मेज़ के इर्द-गिर्द खींचे जाते हैं, मध्ययुगीन लोगों, सनकी या मानसिक रूप से बीमार लोग जो बीसवीं शती में भी यह विश्वास करते हैं कि मेंढ़क के बाल से केन्सर का इलाज़ किया जा सकता है, काले जादू के विनाशकारी अशुभ मंत्र, जिन्हें दुहराने से किसी भी आदमी की आत्मा को अंधेरे नरक में भेजा जा सकता है या अच्छी शुभ प्रार्थनाएँ, जिन्हें एकाग्र मन से पढ़ने या सन्तों के चित्रों को चूमने से बुरी से बुरी बीमारियां दूर की जा सकती हैं।

हालांकि मृत्यु किसी भी दृष्टि से अधिक वांछनीय है, क्योंकि मृत्यु वह दरवाज़ा है, जिसमें से गुजरकर आदमी उस सम्पूर्ण गति को प्राप्त कर लेता है, जो सर्वशक्तिमान और चिरानन्द के सबसे अधिक निकट है, यह उसकी समस्या थी, यह महज़ एक रात की समस्या नहीं थी, बल्कि अब रातों की, जिसे अनेक वर्षों से वह अपने भीतर पालती रही थी और सच पूछा जाए तो यह सिर्फ रात की समस्या नहीं थी, बल्कि दिनों में भी, जिनमें वैवाहिक प्रेम को बड़ी सतर्कता से सँभालकर रखा जाता है, ताकि पति-पत्नी दुःख-सुख को एक साथ झेल सकें, जब तक मृत्यु उन्हें हमेशा के लिए एक-दूसरे से अलग न कर दे। ऐसा वह लड़की सोचती थी, वह लड़की जिसका नाम एमेके था।

किन्तु कुछ देर बाद मैं अँधेरे हॉल में आकर बैठ गया, जहाँ हमारा सांस्कृतिक गाइड वह डॉकूमेंट्री फिल्म दिखा रहा था। उसने शायद सबसे अधिक उबाने वाली फिल्म को चुना था। समूचा हॉल सिगरेट के घुएँ से और शाम के घुंधलके में डूबा था और तब मैंने एमेके का हाथ पकड़ा, कोमल और गर्म, और चूँकि मैं जानता था कि उस 'रिक्रियेशन-सेण्टर' में कल हमारा आखिरी दिन है, सहसा मैंने सोचा कि मुझे कुछ कहना चाहिए, या शायद मैं उस फैली हुई अफ़वाह का शिकार बन गया था कि इन 'रिक्रियेशन-सेण्टरों' में अक्सर लोग कुँवारी जवान लड़कियों, विधवाओं या

दूसरे लोगों की पत्नियों के साथ मज़ा लूटते हैं।

मैं भी अपने को बस में नहीं रख सका और मैंने उससे कहा कि क्या कुछ देर बाहर टहलने के लिए वह मेरे साथ आ सकती है। वह मान गई और मैं खड़ा हो गया। वह भी खड़ी हो गई और पर्दे पर से गिरती सिनेमा की रोशनी में मैंने देखा कि किस तरह मास्टर की निगाहें उसका पीछा कर रही हैं, जब वह मेरे साथ हॉल से निकलकर बाहर आई थी। बाहर इमारत के सामने, जहाँ अगस्त की रात का आलोक फैला था।

हम खेतों के बीच रात की रोशनी में सफ़ेद पगडंडी पर चलने लगे। हमारे दोनों ओर चेरी के पेड़ और चौड़े सफ़ेद पत्थर और घास की गन्ध और लाखों कीड़े-मकोड़ों और झींगुरों की छोटी-छोटी आवाजें थीं।

मैंने एमेके की बग़ल में हाथ डाल दिया, उसने कोई आनाकानी नहीं की। मैं उससे कुछ कहना चाहता था, किन्तु उस क्षण मुझे नहीं सूझा कि मैं क्या कहूँ और हम चुपचाप चलते रहे। शायद मेरे भीतर छिपी अपराध-भावना ने मुझे वे गिरी हुई ठिठोलियाँ करने से रोक दिया, जो अगस्त की रात में कोई भी आदमी किसी लड़की के साथ कर सकता है और छुट्टी के मूड में कोई भी लड़की उसे रोकेगी नहीं, बशर्ते वह आदमी थोड़ा-बहुत जवान हो और शक्ल-सूरत में बिल्कुल ही गया-गुजरा न हो, पर मैं ऐसा कुछ भी नहीं कर पा रहा था, क्योंकि मुझे एक बार फिर यह ख्याल आया कि कोई भी बात, चाहे वह कितनी ही हल्की क्यों न हो–उसके जीवन और मृत्यु से जुड़ी है और यह ख्याल भी कि वह और लड़कियों से अलग है, कहीं अधिक गहरी और विचारशील।

मैं चलते-चलते ठहर गया और मैंने सिर्फ़ इतना कहा, "एमेके!"

और वह भी ठहर गई और उसने कहा, "क्या?"

और तब मैंने उसे आलिंगन में ले लिया, या शायद मैंने सिर्फ उसे

आलिंगन लेने की हरकत की, किन्तु उसने तुरन्त अपने को मेरी अधूरी पकड़ से छुड़ा लिया। मैंने कोशिश की, उसकी पतली और सुडौल कमर को पकड़कर मैंने उसे अपने पास खींचना चाहा, किन्तु उसने झटके से अपने को मुक्त करवा लिया। फिर वह मुड़कर जल्दी-जल्दी चलने लगी।

तेज़ी से भागकर मैं दुबारा उसके साथ हो लिया और धीरे से उसकी कुहनी पकड़ ली। उसने कोई आपत्ति नहीं की और मैंने कहा, "आप नाराज हो गईं?" उसने सिर हिलाया और कहा, "नहीं मैं नाराज़ नहीं हूं।" "सच कहो," मैंने कहा।

"सच मैं नाराज़ नहीं हूँ, लेकिन आपने मुझे बहुत निराश किया।" उसने कहा।

"निराश?" मैंने कहा।

"हाँ," एमेके ने उत्तर दिया, "मैंने समझा था कि आप कुछ अलग किस्म के हैं, लेकिन असल में आप है नहीं, आप पर भी देह सवार है, जैसे और पुरुषों पर।"

"ईश्वर के लिए मुझ पर ख़फ़ा न हो, एमेके।" मैंने कहा।

"नहीं , मैं ख़फ़ा नहीं हूँ, मुझे मालूम है, ज्यादातर मर्द ऐसे ही होते हैं, आपका क़सूर नहीं है, अभी आप मुकम्मिल नहीं हैं। मैने सोचा था, आप सही रास्ते पर हैं, लेकिन आप हैं नहीं। ठीक उसी तरह नहीं, जैसा मैंने सोचा था।"

"और आप?" मैंने कहा, "क्या आप. . . क्या आपने मुकम्मिल तौर से हर दैहिक चीज़ को छोड़ दिया है ?"

"हाँ।" उसने कहा।

"लेकिन अभी आप जवान हैं," मैने कहा, "क्या आप दुबारा विवाह नहीं करना चाहतीं ?"

उसने सिर हिलाया, "सब मर्द एक जैसे होते हैं," उसने कहा, "मैंने सोचा था कि शायद ऐसा कोई मित्र पा सकूँ, जिसके साथ जीना संभव हो सके, लेकिन सिर्फ मित्र की तरह, कोई शारीरिक संबंध नहीं, वह मुझे भयानक लगता है। नहीं, मुझे उससे कोई नफरत नहीं है। मैं जानती हूँ कि देहवादी लोगों को उसकी ज़रूरत है। मैं उसे अपने में बुरा भी नहीं मानती, किन्तु वह एक बुरी चीज़ से पैदा होती है, एक अपूर्ण चीज़ से, शरीर से, जो भौतिक है, जबकि आदमी को आत्मा की तरफ जाना चाहिए, किन्तु अब मैं विश्वास नहीं करती कि कोई ऐसा मित्र पा सकूँगी; और इसलिए मैंने सोच लिया है कि अकेले रहना ही बेहतर है, सिर्फ अपनी बच्ची के संग।" वह बोल रही थी और चाँद और अगस्त की रात और तारों के आलोक में उसका चेहरा अजीब-सा दूधिया और गरिमामय हो आया था।

"आपको ऐसा मित्र कहीं नहीं मिलेगा," मैंने कहा, "उस बाग के माली की बात अलग थी, जो आपको किताबें दिया करता था, क्योंकि उसमें इतनी सामर्थ्य ही न थी. . ."

"उसके बारे में ऐसी बात मत करिए," उसने मुझे बीच में ही टोक दिया, "मेहरबानी करके इस तरह मत बोलिए।"

"लेकिन एमेके, मैं सारी बात बहुत गंभीरता से कह रहा हूँ," मैंने कहा, "क्या आपके भीतर किसी आदमी के लिए चाहना नहीं उठती. . . मेरा मतलब है, जब लड़कियां वयस्क और सुन्दर हो जाती हैं, जैसी आप हैं, तब क्या वे कोई आकांक्षा नहीं करतीं ? क्या आप सचमुच यह सोचती हैं कि आपको कोई ऐसा मित्र मिलेगा ?"

अगर वह अपाहिज या लूला-लंगड़ा न हो, जो आपसे कुछ नहीं चाहेगा?"

"नहीं, चाहना की बात नहीं है," एमेके ने कहा, "हर आदमी के भीतर लालच होता है, उसे अपने को उससे मुक्त करना चाहिए।"

"लेकिन क्यों ? किसलिए ?" मैंने कहा, "जरूरी नहीं कि इस तरह की चाहना सिर्फ़ दैहिक हो, वह प्रेम का लक्षण भी हो सकती है, अपने को पूर्ण करने की चाहना। आख़िर आप अपनी बच्ची से भी तो प्रेम करती हैं। क्या आप नहीं चाहतीं कि आपके और बच्चे हों, जबकि आप इसके काबिल हैं? क्या आप अपनी इच्छा से इन सब चाहनाओं का त्याग कर देंगीं?"

"त्याग?" एमेके ने कहा, "सब ईश्वर की मरज़ी पर है।"

"लेकिन ईश्वर ने क्या आपको किसी तरह रोक रखा है?" मैंने कहा, "उसने आपको कितना कुछ दिया है, औरों से कहीं ज़्यादा....आप जवान, सुन्दर और स्वस्थ हैं। सब आदमी आपके पहले पति की तरह नहीं होते और न ही उन कारणों से लोगों के वैवाहिक संबंध टूटते हैं। ऐसे पुरुष भी होते हैं, जो सचमुच स्त्रियों से प्रेम करते हैं और सिर्फ़ वैवाहिक जीवन के दैहिक पक्ष के कारण नहीं, हालाँकि वह भी प्रेम का एक ज़रूरी हिस्सा होता है....."

"सच्चे प्रेम का वह हिस्सा नहीं होता," एमेके ने कहा, "सच्चा प्रेम आत्मा का प्रेम होता है।"

"अगर ऐसा है, तो बच्चों की चाहना के क्या मायने हैं?" मैंने कहा, "या शायद आप बच्चों के खिलाफ हैं?"

"अरे नहीं," उसने कहा, "बच्चे बेचारे निर्दोष होते हैं और उन्हें प्रेम की ज़रूरत है, लेकिन उन पर पाप का बोझ है, और हर औरत को जो बच्चे को इस दुनिया में लाती है, अपने पाप की पीड़ा भोगनी पड़ती है।"

"यह मेरे प्रश्न का जवाब नहीं है," मैंने कहा, "और आजकल तो बिना पीड़ा के बच्चे जने जा सकते हैं, लेकिन मैं पूछना चाहता हूं कि क्या आप सचमुच इस बात का समर्थन करती हैं कि बच्चे जने जाएँ? क्या आपके तर्क के मुताबिक़ यह बेहतर नहीं होगा कि बच्चे पैदा करने का काम छोड़ दिया जाए? आख़िर इस दुनिया में बार-बार पाप के फलों को लाने का क्या फायदा, ऐसे ही फल, जो देह की भौतिक चाहनाओं से भरे हैं, क्योंकि

अधिकांश बच्चे बड़े बनकर उन्हीं चाहनाओं का शिकार होंगे, जिनसे आप नफ़रत करती हैं......क्या सचमुच यह बेहतर नहीं होगा कि मनुष्य जाति को खुद-ब-खुद नष्ट हो जाने के लिए छोड़ दिया जाए?"

"नहीं-नहीं," उसने जल्दी से कहा, "यह तो ईश्वर की इच्छा है कि वे जीवित रहें। ईश्वर की दया अन्तहीन है और वह चाहता है कि सब लोग अपने पापों से मुक्त हो सकें.......और एक दिन सचमुच वे मुक्त हो जाएंगे।"

"लेकिन ये सब लोग कौन हैं, कब होंगे ये 'सब लोग'?" मैंने कहा, "क्या यह बेहतर नहीं होगा कि दुनिया में अब जितने 'सब लोग' हैं, वे उतने ही रहें?"

"अरे नहीं, आप नहीं समझते।" उसने कहा।

"आप नहीं समझतीं," मैंने कहा, "आप खुद अपने को नहीं समझतीं, आप अन्तर्विरोधों से भरी हैं, अपनी इस रहस्यमय फिलॉसफी में आप एक भी चीज़ का हल नहीं पा सकी हैं, उसमें किसी तरह का लॉजिक नहीं है।"

"आह, यह लॉजिक," उसने कहा, "यह लॉजिक होता क्या है, सिर्फ स्कूली कोर्स का एक विषय।"

"नहीं, वह सब कुछ है," मैंने कहा, "वह यह भी है कि आप मुझे बहुत अच्छी लगती हैं कि.....मैं आपको चाहता हूं कि......"

"नहीं-नहीं, ऐसा मत कहिए," और उसने मुझे वह नियति से भरा वाक्य कहने से रोक दिया, जो कम-से-कम उसके केस में वापस नहीं लिया जा सकता था, जो एक गहरे अर्थ से ओत-प्रोत होता। महज़ ऐसा वचन नहीं, जिसे कभी भी तोड़ा जा सकता है, जिसे कभी भी भुलाया जा सकता है। नहीं वह तोड़ने और भुलाने से बहुत परे होता, क्योंकि वह एक ऐसे प्राणी को सम्बोधित करके कहा जाता, जो वह थी, एमेके, एक गाथा, एक लीजेण्ड, एक कविता, एक अतीत, एक भविष्य।

हम 'रिक्रियेशन-सेण्टर' की इमारत के आगे आकर खड़े हो गए। दरवाज़े से रोशनी बाहर आ रही थी। वह चुपचाप जंगल की छायाओं को देख रही थी, जो शाम की घड़ी में चारों तरफ़ फैल जाती हैं। उसकी आँखों में अब बनैले जानवर का निरीह भाव नहीं था। उनमें अब एक ऐसी नारी की आहट सिमट आई थी, जो अपने युग-युगान्तर से चले आए अभिशाम से जूझती है। ऐसा अभिशाप, जो उसकी कमज़ोरी और जीवन-दाय शक्ति का कारण है, जो एक लाल लहर-सा उसके मस्तिष्क, विचारों और अनुभूतियों को छीलता-छेदता चला जाता है—चाहे उसका अन्त कितना ही पीड़ामय क्यों न हो और बाद में अविवाहित माँ बनने की शर्म और चिन्ताएँ और शरीर के मोटा होने का जोखिम और यह डर कि एक दिन देह का सौन्दर्य और जीवन और सब कुछ ख़त्म हो जाएगा। कोई भी औरत अपने को इस अभिशाप से अछूत नहीं रख सकती, हर स्त्री देर-सवेर अपने को उसके प्रति समर्पित कर देती है और उस अभिशाप से ही उसके भीतर एक नये व्यक्ति का जन्म होता है।

"अच्छा गुडनाइट!" एमेके ने कहा और अपना हाथ आगे बढ़ा दिया।

"एमेके," मैंने कहा, "एमेके, मैंने जो कहा है, आप उसके बारे में ज़रूर सोचिएगा।"

"गुडनाइट!" उसने कहा और वह होटल में ग़ायब हो गई। सीढ़ियों पर मैं उसकी पतली टाँगों को देखता रहा और फिर कुछ नहीं.....कुछ लम्हों के लिए मैं होटल के आगे खड़ा रहा और फिर अपने कमरे में चला आया।

मास्टर अपने बिस्तर पर लेटा था। उसने अपनी जुराबें, जाँघिया, क़मीज़, और पतलून बड़ी सतर्कता से तह करके कुर्सी की पीठ और पलंग के पैतियाने पर फैला दिए थे। वह अभी सोया नहीं था। जब मैं कमरे में घुसा, उसने अपनी मनहूस निगाहों से मुझे ऊपर-नीचे देखा।

"तो क्या हाल है?" उसने कहा।

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया और पलंग पर बैठकर अपने कपड़े उतारने लगा। मेरी तरफ़ घूरती उसकी आँखें दो सूखी खजूरों-सी दिखाई दे रही थीं।

"वाह मेरे यार! यूँ ही सूखा सोओगे?" उसने कहा।

"अरे छोड़ो!" मैंने कहा और कमरे की बत्ती बुझा दी और अपने बिस्तर पर लेट गया।

कुछ देर कमरे में सन्नाटा रहा, फिर मास्टर ने कहा, "मुझे लगता है, तुम औरतों के मामले में घनचक्कर हो। क्यों ठीक कहता हूं न?"

"गुडनाइट!" मैंने कहा।

खिड़की के परे मुर्ग़े की बांग सुनाई दी, शायद किसी दुःस्वप्न ने उसकी रात्रि-निद्रा को सहसा तोड़ डाला था।

दूसरे दिन शाम को मैं 'रेड वाइन' पी रहा था और एमेके को देख रहा था। उसने गर्मियों की पोशाक पहन रखी थी। सफ़ेद छोटे-छोटे कॉलर और नंगी बाँहें। बिल्कुल वैसी पोशाक, जैसी उसकी उम्र और डील-डौल की दूसरी लड़कियाँ पहनती हैं।

पिकनिक में आए हुए दूसरे लोगों ने जब देखा कि मैं अकेला बैठा हुआ पी रहा हूं, तब उन्होंने एमेके को भी नाचने के लिए आमन्त्रित किया।

पहले उन्होंने ऐसा साहस नहीं किया था, क्योंकि 'पिकनिक-सप्ताह' के कानूनों के अनुसार मैं और एमेके एक जोड़ा बन गए थे, क्योंकि वे हम दोनों को हमेशा एक साथ देखते थे और छुट्टियों के दौरान ऐसे 'जोड़ों' के संबंध को पवित्र माना जाता था, जिसमें कोई दख़ल देने का साहस नहीं करता था।

और उसके बाद एमेके हमेशा किसी-न-किसी के साथ डाँसिग फ़्लोर पर दिखाई देती। एक बार सांस्कृतिक-गाइड के साथ, जो पीने के बाद अपने आधे होश खो चुका था; एक बार गडरिये के साथ, जिसका आक्रोश भाव अब तक मिट चुका था और जो अब बची-खुची घड़ियों का पूरा उपयोग कर लेना चाहता था (चार या पाँच लड़कियों में से किसी के साथ भी, जो वहाँ मौजूद थीं)।

एक बार कपड़ों की दुकान के तोंदिल महाशय के साथ, जिनकी स्थूलकाय पत्नी एक मेट्रन की तरह अपनी स्नेह-भरी आँखों से एमेके को देख रही थी; (उन आँखों में किसी तरह की ईर्ष्या नहीं थी, क्योंकि वह उन औरतों में से थी, जो हर आकर्षक लड़की में नारी की भ्रामक नियति का पता चला लेती हैं और उसके आधार पर एक रहस्यमय ढंग से उसे अपनी बहन बना लेती हैं)। एक बार जैज़ के बैंड-मास्टर के साथ, जो सारी शाम स्टेज़ पर वॉयलिन बजाता रहा था। और भी कई लोगों के साथ एमेके नाच रही थी।

और मैं अपनी शराब के तीसरे गिलास के आगे बैठा था, एक अनिश्चित आदमी की तरह, जिसमें एक तरफ अपनी जिम्मेदारी का अहसास होता है और दूसरी तरफ़ वह अपने ज़माने से इतना जुड़ा होता है कि बराबर उसे अपने भीतर सनकीपन, लापरवाही और ज़िम्मेदारी के ख़िलाफ़ लड़ना पड़ता है।

एमेके.......! धीरे-धीरे शराब मेरे सिर की तरफ चढ़ने लगी। एमेके उन पांच-छः लड़कियों से बिल्कुल अलग दिखाई दे रही थी, जो डांसिंग-फ्लोर पर नाच रही थीं। सबसे अधिक आकर्षक, जवान होते हुए भी पकी हुई, जिसमें वह अधकचरापन नहीं था, जो अक्सर सत्रह वर्ष की आयु वाली लड़कियों में होता है, जो अभी तक फ़ैसला नहीं कर पाई हैं कि बचपन के आकर्षण को वयस्क उम्र के तपे हुए ग़ैर दिलचस्प सौन्दर्य में अथवा स्वाभाविक रूप से परिपक्व, उर्वरा लावण्य में बदलना कहाँ तक संगत होगा?

एमेके अन्य लड़कियों की ही तरह हँस रही थी, गहरी 'ऑल्टो' हँसी और एक ऐसी सहज दक्षता के साथ नाच रही थी जैसे पक्षी गाते हैं या चीटियाँ घर बनाती हैं। गर्मियों की झीनी पोशाक में उसकी देह रह-रहकर सरसरा उठती थी। उसकी ओर देखते हुए, पीते हुए उसकी दग्ध आत्मा के प्रति, उसकी देह के प्रति, उसके उरोजों के प्रति मेरे दिल में एक अजीब-सा स्नेह और हमदर्दी और चाहना उफनने लगी। एक गहरा-सा नशा मुझ पर छाने लगा, जिसमें शराब का नशा भी घुल गया था और मुझे लगा मानो मैं एक ऐसे मदहोश अनुभव से गुज़र रहा हूं, जब आदमी एक क्षण की

मरीचिका के लिए अपना पितृत्व, वैवाहिक जीवन, कैरियर, समूचा जीवन, अपना सब कुछ बाज़ी पर लगा देने के लिए तैयार हो जाता है।

मुझे लगा मानो मेरी समूची तर्क-शक्ति और सूझ-बूझ नष्ट हो गई है और उस क्षण मैंने देखा कि हॉल के किसी अँधेरे कोने से मास्टर बाहर आया। उसकी आँखें एक जादू के बिल्ले की तरह चमक रही थीं.....। उसने एमेके को नाचने के लिए आमंत्रित किया और फिर उसके साथ नाचने लगा। उसकी देह को अपनी देह से सटाकर। हालांकि क़द में वह एमेके से कम-से-कम आधा-सिर नीचा था, एक पौराणिक नर पशु जैसा, जिसके चेहरे पर पौराणिकता के गौरव के बजाए सिर्फ़ लपलपाती वासना थी।

मैं उठ खड़ा हुआ, पीने के बाद मेरी देह में एक अजीब फुर्ती-सी आ गई थी। तेज़ कदमों से मैं डांसिंग-फ्लोर की ओर बढ़ा और एमेके को मास्टर से छुड़ाकर अपनी ओर मोड़ लिया। सारा दिन मैंने अपने कमरे में गुज़ार दिया था। मास्टर चोरी-चुपके बाहर खिसक गया था, किन्तु मैं कमरे में सोता रहा था और बाद में उस लड़की के बारे में सोचता रहा था। उन सब सम्भावनाओं के बारे में सोचता रहा था, जो मेरे सामने खुली थीं और अपनी दुविधा और अनिश्चय के बारे में भी, किन्तु अब यह मेरे साथ थी, मैंने कल की तरह उसे बग़ल से पकड़ रखा था और इस बार उसने कोई विरोध नहीं किया था। मेरे सिर पर शराब का झीना-सा नशा था और उसकी आँखें बिल्कुल साफ़ और निर्मल थीं। उनमें अब किसी तरह का रहस्यवादी कुहरा या मॉनेस्टरी में रहकर अपने जीवन को कृत्रिम मृत्यु के हवाले कर देने की बलिदान-भावना नहीं थी। अब उसकी आँखें सचमुच एक हंगेरियन लड़की की आँखें थीं, सूखे रेगिस्तान पर चमकते तारों की तरह चमकीली और पियानो की मदमाती लय ने उसकी झूमती देह के अंगों में, उसकी पतली टाँगों और कमर में एक जादुई थिरकन-सी पैदा कर दी थी।

मास्टर अपनी मेज़ पर लौट आया, जहाँ सफ़ेद शराब का गिलास रखा था और तब उसने अपनी बोझिल, मनहूस, घृणा से लबालब आँखें डांसिंग फ़्लोर की ओर उठाई और एक 'आउट साइडर' की निगाहों से मुझे देखने लगा, जब मैं उस हंगेरियन लड़की के साथ नाच रहा था।

वह जानता था कि मैं जवान हूं, अविवाहित हूं, प्राग का एक ऐसा बुद्धिजीवी युवक हूं, जो उसके उथले छद्म ज्ञान के पाखंड को पहचान सकता है, जिसका सिक्का वह दूसरों पर जमाना चाहता था। वह उन अर्द्धशिक्षित लोगों में से था, जो अक्सर रात के समय 'रिक्रियेशन-सेण्टर' में आए पर्यटकों के सामने फैक्ट्री के मज़दूरों की मूर्खता का मज़ाक़ उड़ाते हैं, या लोहारों की निरक्षरता पर हँसते हैं, जो दस्तखत भी नहीं कर सकते और वे यह भूल जाते हैं कि वे खुद दस्तख़त करने से ज्यादा कुछ नहीं जानते कि उनका ज्ञान गणित के चार नियमों और एक इतिहास के उन मोटे तथ्यों से आगे नहीं जाता, जिन पर पहले वे 'राष्ट्रीय-आत्मा' और 'देश-भक्ति' जैसे बुर्जुआ आदर्शवाद का मुलम्मा चढ़ाते थे और आजकल ऐसी मार्क्सवादी सूक्तियों को तोते की तरह दुहराते हैं, जिन्हें वे ख़ुद नहीं समझते। मास्टर ऐसे ही लोगों में था।

उसकी 'अक्लमंदी' क्लास में बैठे बच्चों या कस्बाती चंडूख़ाने में

बैठे किसानों पर धौंस जमाने से आगे नहीं जाती थी। उसे मालूम था कि मेरी शिक्षा-दीक्षा उससे कहीं ज्यादा है (हालाँकि मेरी 'शिक्षा' भी काफ़ी अधकचरी थी। एक तरह का बुद्धिवादी प्रपंच-निन्यानवे प्रतिशत उन मैट्रिक पास लोगों की तरह, जो शिक्षित होने का भ्रम पैदा करते हैं, उनमें से केवल एक प्रतिशत ऐसे होते हैं, जो आगे चलकर फिज़िक्स या नक्षत्र-विज्ञान या शरीर विज्ञान में कुछ महत्त्वपूर्ण काम करने में सफल होते हैं)।

उसे मालूम था कि मेरा कोट भी, जिसे प्राग के दर्ज़ी ने सिया था, उसके अपने कोट से ज्यादा बेहतर था, जो उसने अपने ठिंगने शरीर पर (जो एमेके से भी छोटा था) अड़ा रखा था, एक ऐसा स्टैंडर्ड कोट जो किसी फैशन के दायरे में नहीं आता और जो किसी भी समय शायद आधुनिक न रहा हो। कोट के भीतर उसकी टाई झाँक रही थी, शाश्वत मॉडल की टाई, जो ऊपर से नीचे तक धुंधले धब्बों और धारियों से भरी थी। उसे अपनी कमजोर, नगण्य और घिसी-पिटी हालत का अहसास था और इसलिए वह अपनी मनहूस और मजबूर आँखों से डाँसिंग-फ़्लोर की ओर देख रहा था, जहाँ मैं एमेके के साथ नाच रहा था।

देर तक हम एक-दूसरे से नहीं बोले। मैं उसकी देह को महसूस कर रहा था, जो जवानी की भीतरी गहराई, संगीत, शराब, उमस और नृत्य के मिले-जुले असर से चमचमा रही थी।

हम दोनों ख़ामोश थे और तब अचानक ऑर्केस्ट्रा के वॉयलनिस्ट ने एक लम्बी, किन्तु तेज़ जिप्सी धुन छेड़ दी। ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी लय में झूमती हुई धुन, जो शुरू में एक बहुत लम्बी, शक्तिशाली 'टोन' पैदा करती है और अन्त में एक छोटे-से बेहोशी के दौरे में विस्फोटित हो जाती है, एक धक्के की तरह; और फिर एक ऊँचे स्तर पर जाकर जारी रहती है और तब एमेके हंगेरियन भाषा में अपने बनजारे-पुरखों का एक आदिम क़िस्म का प्रागैतिहासिक, सुन्दर, पथरीला-सा गीत गाने लगी। वह दुबारा उसमें बदल

गई, जो वह सचमुच में थी। एक अल्हड़ जवान लड़की, जिसकी समूची शक्ति अपने नारी-जीवन के एकमात्र लक्ष्य में केन्द्रित हो गई थी।

और हम मतवाले-से होकर वह हंगेरियन नृत्य नाचने लगे और हमारे चारों ओर शराबियों के चेहरे और ऑर्केस्ट्रा के चाँदी के वाद्य-वृन्द तेजी से घूमने लगे, मानो सिनेमा के पर्दे पर कोई बहुत तेज़ी से कैमरा घुमा रहा हो।

पता नहीं, कितनी देर तक हम इस तरह नाचते रहे। शायद बहुत देर तक। बाद में आधी रात के समय स्लोफ़ॉक्स की भावुक मर्मस्पर्शी धुन सुनाई दी। केवल सेक्सोफोन जैसे वाद्य की ही यह सामर्थ्य है कि वह इस तरह का करुणापूर्ण सुर अपने भीतर से निचोड़कर बूंद-बूंद निकाल सके।

एमेके ने गाना बन्द कर दिया और इस बार मैं बोलने लगा। शायद यह मेरे अवचेतन में जमे उन अनगिनत 'ब्लूज़' का चमत्कार था, जो कभी मुझे बहुत उत्तेजित कर देते थे और मेरे भीतर तीन पदों की कविताएँ घुमड़ने लगीं, कुछ उसी तरह, जैसे गिटार बजाने वाले नीग्रो की चेतना से बाहर आती हैं, जो शराब के नशे में सहसा मुक्त हो जाता है, जैसे उस रात शराब ने मुझे मुक्त कर दिया था और तब मैं एमेके के कानों में अपने एक 'ब्लूज़' के पद गुनगुनाने लगा, जो बहुत पहले मैंने कभी लिखे थे, सेक्सोफ़ोन की मदमाती धुन में रँगे हुए ?

हालाँकि गँवई-गाँव के उसे बेचारे सेक्सोफ़ोनिस्ट को नीग्रो लोगों के उन्मत्त बेहोश मतवालेपन का रहस्य नहीं मालूम था, फिर भी उसका शाश्वत, आदिम सौन्दर्य उस बहके, मतवाले क्षण में आकर मिल गया, जहाँ आदमी की दुश्मन शराब सहसा उसकी मित्र बन जाती है, मदद करती है कि वह सत्य जान सके, खुद अपने बारे में, एमेके के बारे में। सिर्फ़ यह क्षण सत्य है, पहला और अन्तिम। हाँ दोस्तो, सिर्फ यह छोटा-सा क्षण, जो पहला और आख़िरी है। हम इस क्षण की प्रतीक्षा में कितने बरस, महीने, लम्बे दिन गुज़ार देते हैं।

एमेके सहसा चुप हो गई थी और मुझे निहार रही थी। मेज़ों के ऊपर रोशनियों और सिगरेट के धुएँ के परे मुझे उसकी लम्बी, चमकीली भौंहें दिखाई दे रही थीं और मैंने कहा कि ज़िंदगी एक जंगली कबीला है; और तुम महज़ उसके हाथों से मृत्यु पाने की प्रतीक्षा कर सकते हो। ज़िंदगी एक बहुत लम्बी मृत्यु है और नहीं है, और तुम प्रतीक्षा करते हो कि कब वह तुम्हारी हत्या कर डालेगी। कभी-कभी लम्बे अर्से तक लगता है कि ज़िंदगी नहीं है और फिर अचानक वह आ जाती है। यह वह क्षण है, जब मुलाक़ात हो सकती है, मुलाक़ात का सिर्फ़ यही एक क्षण है। सुनो, कान खोलकर सुनो, इस क्षण की आवाज़......!

और तब एमेके के होंठों पर जिन पर हमेशा मॉनेस्टरी के ठंडे, मलिन फूल जमे रहते थे, सहसा एक खुली-सी मुस्कान फूट पड़ी।

और मैंने कहा, "तुम रात-भर इतनी खुशी से मुस्कराती रहो, यहाँ कोई नहीं था, लेकिन अब कोई आ गया है, जो तुम्हें मदद दे सकता है।"

उसने मेरी ओर आँखें उठाईं।

आँखों में भी वैसी ही मुस्कान थी, जैसी होंठों पर। सेक्सोफ़ोन का सिसकता-सा स्वर सुनाई दे रहा था।

सुनो, अपने कान खोलकर सुनो और देखो, वहाँ दूर कैसी बिजली चमक रही है। यह प्यार की विद्युत-रेखा है, दूर अँधेरे में चमकती हुई। मृत्यु का साम्राज्य ख़त्म हुआ, ज़िंदगी का मधुर मौसम शुरू हो रहा है।

और इस पर एमेके ज़ोर से हँस पड़ी और कहा, "बहुत सुन्दर कविता है, किसने लिखी है?"

किंतु मैंने सिर्फ़ सिर हिला दिया और बोलता गया, "प्रिये.....मत पूछो, यह मैं हूं, और यह कविता सिर्फ इस लम्हे की है, यह मैं हूं और मेरी कविता के ये शब्द सिर्फ़ इस लम्हे में जन्मे हैं, वे कहीं से नहीं आए, वे अब और यहाँ के हैं। ये सिर्फ़ आनन्द और मुस्कान के लिए हैं।" एमेके ने सिर हिलाया।

सेक्सोफोन का सिसकता, सुबकता स्वर रेंगता हुआ हमारे पास चला आया और मैं मनचाहे उस कविता को आगे बढ़ाता गया, एक के बाद एक शब्द किसी विचित्र, अजनबी प्रेरणा से मेरे पास खिंचते आए जिनके बारे में मुझे उस क्षण से पहले या बाद में कोई गुमान भी न था और उस क्षण मुझे अपनी वह कविता सोलोमोन के गीत की तरह सुन्दर लग रही थी—या शायद उससे भी अधिक सुन्दर, क्योंकि उस लड़की ने इन शब्दों को अपनी ज़िंदगी में पहले कभी नहीं सुना था, किसी ने अभी तक पायथोगोरस का बुनियादी प्रेम-वाक्य उससे नहीं कहा था कि तुम कितनी सुन्दर हो क्योंकि अपनी इस छोटी, समूची ज़िंदगी में उसने कभी अपने को खरीदी हुई जायदाद या खून, मांस और हड्डियों से बनी हुई देह-मात्र से ज्यादा और कुछ महसूस नहीं किया था। किंतु अब उसने यह कविता सुनी थी, जिसे एक पुरुष ने उसके लिए रचा था, जो एक पुरुष के अन्तस्थल से निकली थी, जो इस युग का जादुई चमत्कार था, मेम्फिस के किसी मुहल्ले में रहनेवाले नशे में धुत नीग्रो के कंठ और हृदय से निकले हुए उद्गार प्राग का एक बुद्धिजीवी चेकोस्लोवाक समाजवादी देश के एक 'रिक्रियेशन-सेण्टर' के नाचघर में दुहरा रहा था—किन्तु एमेके को उस कविता का इतना लम्बा-टेढ़ा इतिहास नहीं मालूम था, वह केवल उस आदर्शमय नुस्खे से ही परिचित थी, जिससे किसी कविता का जन्म होता है और वह सही भी था क्योंकि हर कविता एक खास तात्कालिक मौके पर स्वतः रची जाती है—किसी औरत के लिए और अगर ऐसे नहीं रची जाती तो वह कविता नहीं है, कम-से-कम इस योग्य नहीं है कि उसे पढ़ा या सुना जाए क्योंकि तब वह उस एकमात्र असंदिग्ध और सच्ची प्रेरणा से उत्पन्न नहीं होती, जिससे सब कविताओं का जन्म होता है।

मुझे लगा, वह बहुत प्रसन्न है और उसने फुसफुसाते स्वर में मुझसे पूछा, "क्या मैं आप पर विश्वास कर सकती हूं? क्या आप सब कुछ संजीदगी से कह रहे हैं?"

"हाँ, एमेके," मैंने कहा, "मैंने जो कुछ कहा है, अपनी आत्मा से, अपने दिल से, या अपने भीतर के उस स्थल से जहाँ से नशे में मदमाते गिटार के ब्लूज़ उफनते हुए बाहर आते हैं।"

मुझे नहीं मालूम, किन्तु उस क्षण मुझे लगा, जैसे मैंने उससे वैवाहिक संबंध बना लिया है। उस क्षण मैंने वह समझ और सूझ प्राप्त कर ली थी, जिसे हमारा यह युग भुला चुका है। यह गहरा सत्य कि वैवाहिक संबंध, स्त्री के साथ पुरुष का जीवन नहीं है, जो भावुकता और उन्माद, गन्दगी और इन्द्रिय भोग, आत्माओं का मिलन और पारस्परिक स्वार्थों के विचित्र घोल से उत्पन्न होता है, और न ही उसमें दो व्यक्तियों की आपसी सहमति, बौद्धिक स्तरों की समानता या उलटे स्वभावों की पूरकता जैसी शर्तें कोई मानी रखती हैं।

मुझे हँसी आती है, जब लोग घरेलू व्यवस्था और चौकसी और भोजन और 'पेट के जरिए दिल का रास्ता' बनाने में वैवाहिक सुख का लक्ष्य ढूंढ़ते हैं। नहीं, दो व्यक्तियों का संबंध वह नहीं है, जो हॉलीवुड की हास्यास्पद फिल्मों, या स्तालिन-युग के फॉर्मूला-बद्ध उपन्यासों में दिखाया जाता है। इस क़िस्म का वैवाहिक संबंध अक्सर जवानी की क्षणभंगुर वासना अथवा मध्यवर्गीय टटपूंजियेपन से शुरू होता है और उसका अन्त तलाक़ के उन ग़लीज और घिनौने मुक़दमों में होता है, जिनमें दोनों ही एक-दूसरे के प्रति अपनी भयानक घृणा प्रकट करते हैं। नहीं, सही वैवाहिक रिश्ता, नर और मादा का रिश्ता है, आदिम युग में गुफ़ा में रहनेवाले नर-नारी का जोड़ा, जिनमें न कोई बड़ा था, न छोटा, हालाँकि अपने व्यक्तित्व में दोनों ही एक-दूसरे के बिल्कुल भिन्न थे। एक भाले को संभालता था, दूसरा आग को, एक जानवर का शिकार करता था, दूसरा रोटी सेंकता था, दोनों ही मिलकर पशु-जगत् के अनुसार इस दुनिया में अपनी सन्तान लाते थे, जिसका एकमात्र अर्थ नई पौध की सृष्टि था, नंगी खाल पर धूप सेकने का आनन्द, देह में फड़कती हुई शिराओं के छन्द और दिल में उगता हुआ एक बहुत

कोमल सुख, जो आज हमें उस नियम की याद दिलाता है कि उस आदमी को दोबारा उस ओर बढ़ना चाहिए, जहाँ जानवर हैं, बेशक ऊँचे स्तर पर, जहाँ पर वह रुग्ण भावुकता की उस परम्परागत गन्दगी से छुटकारा पा सके, जो शताब्दियों से नर और नारी के सम्बन्धों को लड़ाइयों, डकैतियों, तरह-तरह के रहस्यवादी फ़लसफ़ों, पुरुष की दासता और पुरुष की प्रभुता से दूषित करती आई है।

किंतु जब मैं डाँसिंग-हॉल में दुबारा आया कुछ देर के लिए मैं बाहर गया था, टॉयलेट के गलियारे में, जहाँ मैं बिना शब्दों के 'ब्लूज़' गुनगुनाता जा रहा था, कुछ इस ढंग से, जैसे हमेशा से हर देश के नवयुवक नाच और संगीत की खुशी की झोंक में अचानक गुनगुनाने लगते हैं।

तब वहीं गलियारे में मेरी भेंट जैज़ के बैण्ड-मास्टर से हो गई और हम दोनों बहुत हार्दिक प्रेम-भाव से एक-दूसरे से बातचीत करने लगे और उसे यह जानकर बहुत खुशी हुई कि जैज़ के वर्ण-भेद विरोधी, फासिज़्म-विरोधी अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारे में मैं भी उसी की तरह शामिल हूं।

वापस लौटकर मैंने सहसा देखा कि मास्टर ने एमेके के हाथ पकड़ रखे हैं और वह उसके कानों में कुछ फुसफुसा रहा है और जब उसकी निगाहें मुझ पर पड़ीं (मैं एक खम्भे का सहारा लिए खड़ा था और उन्हें देख रहा था), उसके चेहरे पर हवाइयाँ-सी उड़ने लगीं, कुछ उस आदमी की तरह, जिसे रँगे हाथों पकड़ लिया गया हो। जब नाच का वह अंश समाप्त हुआ, तो वह एमेके के आगे झुका और अप्रत्याशित रूप से खुद अपनी मरज़ी से अपनी मेज़ पर लौट गया, जहाँ सफ़ेद शराब उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। मेज़ के आगे बैठकर वह दोबारा अपनी घृणा-भरी काली आँखों से मुझे घूरने

लगा। एक ऐसे आदमी की तरह, जिसने किसी शाश्वत प्रतियोगिता में अपनी पराजय का बदला चुका लिया है।

मैं एमेके के निकट आया और नाचने के लिए उसकी बग़ल में हाथ डाल दिया, किन्तु वह अचानक बिल्कुल बदल गई थी। आँखों की पुतलियों पर दोबारा एक उजाड़ ख़ामोशी की झिल्ली उतर आई थी।

"एमेके, क्या बात है? क्या हुआ आपको?"

"कुछ नहीं," उसने कहा, किन्तु वह मरी-मरी-सी नाच रही थी, जैसे निष्प्राण, उन अलसाए विरक्त लोगों की तरह, जो दोपहर की चाय के समय किसी रेस्तराँ में नाचते हैं। कोई अकेला आदमी शहरी दोपहर की अपनी ऊब मिटाने के लिए किसी लड़की को नाचने के लिए आमंत्रित करता है, वह उदासीन-भाव से अपनी मेज़ से उठती है, दोनों ही एक-दूसरे को नहीं जानते। अपने में खोए-से वे धीमी गति फ़ॉक्स-ट्रॉट नाचते हैं। दोनों ही खामोश रहते हैं, या कभी-कभी इक्का-दुक्का बात कह देते हैं। दोनों में से कोई भी एक-दूसरे को पसन्द नहीं करता। नाच खत्म होने पर दोनों सिर झुकाते हैं। आदमी लड़की के साथ उसकी मेज़ तक जाता है, जहाँ लेमनेड की बोतल रखी है। वह उसे शुक्रिया अदा करता है, वह सिर हिलाती है और फिर दोनों एक-दूसरे से जुदा हो जाते हैं। दोनों आखिर तक एक-दूसरे के बारे में कुछ नहीं जान पाते। वह दुबारा अपनी मेज़ पर लौट आता है और आधे ख़ाली रेस्तराँ के आधे ख़ाली डांसिंग-फ़्लोर की ओर ताकता रहता है, दोबारा नहीं नाचता और बाद में अकेला ही अपने घर लौट जाता है, सोने की तैयारी करता है और महानगर का विरक्त सूनापन सायँ-सायँ-सा करता उसे दबोच लेता है, निगल लेता है।

"क्या हुआ है आपको?" मैंने आग्रह-भरे स्वर में दुबारा पूछा, "ज़रूर कोई बात हुई है एमेके, मुझसे छिपाइए नहीं।"

उसने मेरी ओर देखा। उसकी आँखों में, आँखों के इर्द-गिर्द, चेहरे की

उन कोमल झुर्रियों में, जो तुरन्त हर व्यक्ति की भाव-मुद्रा का नक़्शा खींच देती हैं, पीड़ायुक्त आश्चर्य झलक रहा था। आत्म-लांछना का ऐसा निरीह भाव, जो उन औरतों के चेहरे पर आ जाता है, जो सहसा यह महसूस कर लेती हैं कि उन्होंने ग़लती से फिर वही काम कर डाला है, जिसे न करने का वे बहुत पहले प्रण कर चुकी थीं।

और उसने मुझसे कहा, "अगर आप बुरा न मानें, तो मैं आपका पासपोर्ट[1] देखना चाहूंगीं।"

मुझे गहरा धक्का-सा लगा। नहीं, मुझे कोई पीड़ा नहीं हुई। नहीं उसके प्रश्न पर गुस्सा आया, किन्तु उसके सहज दफ़्तरी सवाल ने मुझे हिला-सा दिया और तब उस क्षण एकाएक मुझे उस पर गहरी सहानुभूति हुई। उसने कितनी सादगी, सहजता और ईमानदारी से मेरी इस बात को स्वीकार कर लिया था कि मैं उससे विवाह करने को राज़ी हूं और यह कितना ठीक भी था, क्योंकि उसमें किसी तरह की उलझी हुई फ़िल्मी क़िस्म की भावुकता नहीं थी।

और तत्काल मैं समझ गया कि हो न हो, यह ज़रूर मास्टर की करतूत है। अपने असहाय गुस्से में उसने एमेके के कानों में यह बात भरी है कि मैं जालसाज हूं कि मैं विवाहित आदमी हूं, जो अपने विवाहित जीवन से कुछ दिनों के लिए मुक्त होकर यहाँ रंगरेलियाँ मनाने आया है। मुझे याद आया कि मैंने उससे कहा था कि मैं एक विधवा औरत से विवाह करने जा रहा हूं, उस बात को लेकर मास्टर ने अपने कमीने दिमाग़ से यह क़िस्सा गढ़ा था, जो गलीज़ होने के बावजूद एमेके के लिए काफी विश्वसनीय और तर्कसंगत रहा होगा और उस क्षण एमेके के प्रति मेरा दिल गहरे अफ़सोस से भर उठा। न जाने अपने विवाहित-जीवन में कितनी बार उसका पाला ऐसे धूर्त, जालसाज़ क़िस्म के लोगों से पड़ा होगा और अब यह जानकर वह

1. हर चेक नागरिक के पास अपना पासपोर्ट होता है, जिसमें और बातों के अलावा यह भी लिखा रहता है कि वह विवाहित है या अविवाहित।

आतंकित-सी रह गई होगी कि मैं भी उन्हीं में से एक हूँ।

"एमेके," मैंने कहा, "आपको मेरे बारे में किसी ने कुछ कहा है? बेशक, मैं आपको अपना पासपोर्ट दिखा सकता हूं।" और मैंने अपने कोट की अन्दरूनी जेब में हाथ डाला, ताकि मैं वह डॉकूमेण्ट दिखा सकूँ, जो मेरी सच्चाई, मेरे चेहरे का प्रमाण था।

पर तब उस क्षण मुझे उसका स्वर सुनाई दिया, अनिर्वचनीय उदासी से भीगा हुआ, "मुझसे झूठ क्यों बोल रहे हैं आप (प्रेचोमी सिगानीते? उसने अपनी हंगेरियन-स्लोवाक भाषा में कहा था)। नहीं, मैं कुछ नहीं देखना चाहती। मैं सब जानती हूँ।"

"लेकिन क्या? एमेके, क्या जानती हैं आप? जानने के लिए है क्या?" मैंने कहा, "इनकार करने से क्या फायदा?"

उसने कहा, "मैं सोचती थी, आप अलग हैं, लेकिन आप नहीं हैं, नहीं हैं, नहीं हैं। आप और मर्दों की तरह ही हैं।"

"लेकिन एमेके।"

"नहीं, कुछ मत कहिए, मैं जानती हूँ.....कम-से-कम आप अपनी मँगेतर का तो ख़्याल कीजिए, अगर आपको मेरा ख़्याल नहीं है। मैं आख़िर आपके लिए अजनबी से ज्यादा कुछ नहीं। आप सिर्फ़ कुछ दिनों से मुझे जानते हैं, लेकिन ईश्वर के लिए बेचारी उस लड़की पर क्यों......."

"एमेके, आप कैसी ऊल-जलूल बातें कह रही हैं।" मैं चीखने-सा लगा, "उस नामाकूल मास्टर ने आपके कानों को भरा है, लेकिन उसकी बात सफेद झूठ है......आप देखती नहीं, वह कितना मक्कार शख़्स है?"

"आप उससे नफ़रत करते हैं।" उसने कहा, "वह भला आदमी है। उसने मुझे आपके बारे में आगाह कर दिया, वरना मैं......."

"लेकिन यह सच नहीं है, एमेके, उसकी बात में रत्ती-भर सच नहीं

है।" मैंने कहा।

"मेहरबानी करके झूठ मत बोलिए......आपने उसे अपनी मंगेतर का फोटो भी दिखाया था, लेकिन.....(मैंने मास्टर को मागरिता और उसके दो वर्ष के लड़के का फ़ोटो दिखाया था। पता नहीं क्यों.....शायद उसके सामने शेख़ी बघारने के लिए) अच्छा, अगर आप कहते हैं कि यह सच नहीं है, तो मुझे अपना पासपोर्ट दिखा दीजिए।" एमेके ने कहा।

तब मुझे याद आया कि वह फ़ोटो मेरे पासपोर्ट के भीतर है, जिसे बाहर निकालकर मैंने मास्टर को दिखाया था और शायद यह बात मास्टर ने उससे भी कही थी.....वह फ़ोटो, जिसमें गर्मियों की हल्की फ़्रॉक के भीतर से मागरिता के वक्ष दिखाई देते थे और उसका उजले बालों वाला बच्चा, जो डेन्डेलियन के फूलों के बीच घास पर लेटा था।

"मैं पासपोर्ट आपको नहीं दिखा सकता।" मैंने कमज़ोर आवाज़ में कहा, "लेकिन विश्वास कीजिए, यह सच नहीं है।"

"झूठ मत बोलिए," एमेके ने कहा, "कम-से-कम आप मुझ पर इतना रहम करें और झूठ न बोलें।"

"मैं झूठ नहीं बोल रहा।" मैंने कहा, "एमेके, सच, मैं झूठ नहीं बोल रहा, लेकिन मैं पासपोर्ट आपको नहीं दिखा सकता। क्यों? नहीं दिखा सकता, क्योंकि......"

"क्यों?" एमेके ने अपनी टटोलती हुई आँखें मुझ पर उठा दीं, मानो जंगल का कोई अकेला, निरीह जन्तु मेरी ओर ताक रहा हो, किन्तु इस बार मुझे लगा, जैसे कोई चीज़ उससे छिन गई हो, जंगल की स्वतन्त्रता का भ्रम, हरी झाड़ी के बीच सुरक्षा का भ्रम, जैसे अचानक उसकी दृष्टि किसी ख़ूंख़्वार हिंस्र जानवर पर पड़ गई हो, जिसके अस्तित्व को वह अपनी हरी-भरी, धूमिल दुनिया में भूल चुकी थी।

"क्यों नहीं दिखा सकते?" उसके स्वर में एक अजीब-सा आग्रह,

अनुनय और तड़पन थी जिसे मैंने पहले कभी नहीं सुना था। निरीह जन्तु की-सी उसकी आँखें फटी-फटी-सी फैल गईं थीं, मानो अन्तिम और निश्चित रूप से उसने शिकारी जानवर के पीले, हिंस्र दाँतों की कौंध को पहचान लिया था, और फिर से मॉनेस्टरी की गहरी सफ़ेदी ने उसके चेहरे की अस्वाभाविक लालिमा को ढक लिया।

और एमेके ने पीड़ा से काँपते हुए, लगभग रोते हुए स्वर में कहा, "मुझे छोड़ दीजिए। मैं अब जाऊँगी। मुझे रात को एक बजे की गाड़ी से जाना है......" उसने झटके से अपने को मुझसे अलग कर दिया और तेज़ कदमों से हॉल से बाहर चली गई, बाहर।......और मैं खड़ा रहा। वह आँखों से ओझल हो चुकी थी।

मैं मुड़ा और मेरी निगाहें मास्टर पर जा पड़ीं। वह अब भी मेज पर डटा था।

न्यायोचित अभिमान का आहत भाव लिए उसका चेहरा गहरी कुटिलता में सुलग रहा था।

'रिक्रियेशन-सेण्टर' की इमारत के सामने मैं साढ़े बारह बजे आकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। जब वह आई, तो अकेली न थी। उसके साथ अपनी रूम-मेट थी, जो हंगेरियन थी और पाँच स्लोवाकों का जत्था भी था, जो उस रात की गाड़ी से जा रहे थे। मुझसे यह छिपा न रहा कि उसने जान-बूझकर उस हंगेरियन लड़की को अपने साथ ले लिया था, ताकि उसे मेरे साथ अकेला न रहना पड़े। वह लड़की रास्ते-भर हमारे साथ चिपकी रही और मैं उसके सामने एमेके से कुछ भी न कह सका।

मैंने सिर्फ़ इतना पूछा कि क्या मैं उसे पत्र लिख सकता हूं।

"ज़रूर," उसने कहा, "क्यों नहीं लिख सकते?"

"और आप भी मुझे लिखेंगी?" मैंने पूछा।

"क्यों?" उसने कहा।

मैंने बहुत धीमी आवाज में कहा, ताकि दूसरी लड़की न सुन ले, "क्योंकि मैं आपसे प्रेम करता हूं। एमेके, मुझ पर विश्वास कीजिए।"

"मैं आप पर विश्वास नहीं करती।" उसने कहा।

दूसरी लड़की एक क़दम आगे चली गई थी, लेकिन इतनी दूर नहीं कि हमें सुन न सके, इसलिए मुझे बराबर धीमी आवाज़ में बोलना पड़ रहा था।

"मुझ पर विश्वास कीजिए," मैंने एक बार फिर दुहराया, "मैं आपके शहर कोशित्से में आऊँगा, आ सकता हूँ?"

"क्यों नहीं आ सकते?" उसने कहा।

"लेकिन मैं वहाँ आपसे मिल सकता हूं? आपसे बातचीत कर पाऊँगा?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

"एमेके, आप मुझ पर विश्वास करेंगी?"

वह एक क्षण चुप रही, फिर कहा, "मैं कह नहीं सकती। शायद," उसने कहा। उसने 'शायद' बाद में कहा, जब हम स्टेशन पहुँच चुके थे।

गँवई-गाँव का छोटा-सा स्टेशन, जहाँ गाड़ी तैयार खड़ी थी और इंजन-ड्राइवर अपनी यूनीफॉर्म में प्रतीक्षा कर रहा था।

एमेके के साथ के लोग डिब्बे में चढ़ने लगे। एक स्लोवाक ने एमेके को सूटकेस समेत भीतर बैठाने में सहायता दी। बाद में उसकी काली-सी छाया कम्पार्टमेंट की खिड़की पर दिखाई दी।

"एमेके," मैंने सिर उठाकर कहा, मानो मैं उसके सम्मुख प्रार्थना कर रहा हूं, मानो मैं उससे अपने जीवन के किसी, शाश्वत, एकमात्र प्रश्न का उत्तर माँग रहा हूं। ऐसा प्रश्न, जो घिसे-पिटे, मूल्यहीन, नक़ली, प्रेम-शून्य सूत्रों से बँधा होने पर भी स्वतंत्रता का सुविधाजनक भ्रम देता है, और शायद यही सोचकर मैं डावांडोल-सा खड़ा रहा।

"एमेके," मैंने अंधेरे में ऊपर उस छाया से, उस गाथा से कहा, जो ख़त्म हो चली थी।

और तब मुझे उसका बहुत धुँधला-सा बहुत दूर से आता हुआ स्वर सुनाई दिया, "हाँ, क्या है?"

"मुझ पर विश्वास कीजिए, मेहरबानी करके......" मैंने अंधेरे में फुसफुसाते हुए कहा, "एमेके!"

"अच्छा," उसने (उसके स्वर में जंगल की झाड़ी में छिपे अकेले जन्तु की पुकार नहीं थी) कहा, किन्तु अब वह एक ऐसी समझदार, शंकालु और निराश लड़की का स्वर था, जो बाद के दिनों में सिर्फ़ खोए हुए समय की एक तस्वीर बनकर रह जाती है।

इंजन ने खखारा, रेल हिलने लगी। खिड़की से एक सफ़ेद, पतली बाँह हिलती दिखाई दी। अँधेरे में हिलता हुआ एक स्वप्न, पागलपन, एक सत्य, जो एमेके का था।

उस रात मेरे भीतर सब कुछ चुक गया। शराब का नशा, समझदारी और पहचान का आलोक, या 'रिक्रियेशन-सेण्टर' का कुछ दिनों का सम्मोहन, या कोई और चीज़।

कुछ भी रहा हो, किन्तु जब मैं दूसरे दिन इतवार की सुबह उठा, तो उनमें से कोई चीज नहीं बची रह गई थी, सिर्फ एक ठंडा यथार्थ कि यह इतवार की सुबह है और मुझे प्राग लौट जाना है, अपने संपादकीय मंडल के सहकर्मियों के पास। उस पीड़ायुक्त अनुभव के पास, जो मागरिता थी, तमाम दुनिया के पास जो मेरी दुनिया थी।

साथ के पलंग पर मास्टर खर्राटें भर रहा था। हमेशा की तरह उसने पैंट, कमीज, जाँघिया बड़े करीने से सुखाने के लिए टाँग रखे थे।

मैंने कुछ नहीं कहा। मेरे लिए वह जघन्य प्राणी था। अपने धुले हुए कपड़ों के बावजूद, क्योंकि महज़ अपने जांघिए, कमीज या पैंट को धोने से ही आदमी अपनी आत्मा की गन्दगी नहीं धो सकता। वह खुद आदमी भी नहीं था। अगर वह कुछ था, तो सिर्फ जीता-जागता गन्दगी का ढेर, घमंडी और वासना की लार टपकाता हुआ ईडियट, दुश्मन!

मैंने उससे कुछ नहीं कहा। अगर मैं उससे कुछ पूछता, तो सम्भव है, वह साफ मुकर जाता। मेरे पास कोई सबूत नहीं था और उस पर तमकने से

मैं कोई भी चीज उसके ख़िलाफ़ साबित नहीं कर सकता था। मैंने चुप्पी साध ली, किन्तु जल्दी ही मेरी बारी आई, बदला लेने की बारी और वह बदला भी ऐसा था, जो उसकी नाजुक रग को छूता था। एक पेशेवर शिक्षक होने के नाते उसने अपने भीतर बुद्धिजीवी होने की जो आत्मतुष्टि पाल रखी थी, उसकी पोल खोलता था। मैंने वही सोचा था कि जो गड्ढा उसने खोदा है, उसमें वह खुद ही गिरने वाला है।

कि न्तु शायद इसका श्रेय भाग्य को जाना चाहिए, सर्वेसर्वा, प्रति-शोधक, सहचर, शासक और न्यायप्रिय भाग्य, जिसने अकस्मात् उस ट्रेन में मास्टर से बदला चुकाया था।

बाहर गर्मियों के बाद की रसीली धूप में समूचा प्रान्तर झिलमिला रहा था। चिरन्तन, धूप, मनुष्य की सीमागत चिरन्तनता में भी चिरन्तन धूप, जिसके सुख, चमचमाते प्रकाश में कम्पार्टमेंट में बैठे लोगों के चेहरे जगमगा रहे थे, मानो वे पेट्रोल के लैम्प हों, स्वर्णिम चित्रों में बदल दिए गए हों।

हम एक साथ ही ट्रेन के डिब्बे में बैठे थे। एक निस्संतान दम्पति, जिनकी उम्र तीस के आस पास रही होगी, पति किसी योजना दफ्तर के टेक्नीकल विभाग में क्लर्क था, पत्नी आँकड़ों के किसी सरकारी दफ्तर में काम करती थी। फैक्ट्री में काम करने वाला कारीगर जो 'रिक्रियेशन सेण्टर' में हमेशा ख़ामोश रहा करता था, गडरिया, कपड़ों की दुकान का मैनेजर और उसकी पत्नी, मैं और मास्टर। हम सब एक-दूसरे से 'रिक्रियेशन-सेण्टर' में ही परिचित हो गए थे।

हमारे बीच एक खेल शुरू हुआ । उस खेल का सुझाव दफ्तर के क्लर्क और उसकी पत्नी ने दिया था। बाल-बच्चे न होने के कारण दोनों ही अक्सर वक्त काटने के लिए यह खेल खेलते थे, प्रायः अपने उन क्लर्क

साथियों के साथ, जो उन्हीं की तरह बाल-बच्चों के झंझट से मुक्त थे। हर वृहस्पतिवार को पति अपने दोस्तों के साथ 'मार्याश' और पत्नी अपनी सहेलियों के साथ ब्रिज खेलने जाया करते थे। दोनों ही 'टूरिस्ट-क्लब' के सदस्य थे और वसन्त के दिनों में वे अक्सर इतवार के दिन किसी पहाड़ी कॉटेज में चले जाया करते थे, जहाँ दूसरे पड़ोसियों के साथ बॉलीवाल खेला करते थे और अंधेरा होने पर इस तरह के घरेलू खेल, जिसका सुझाव उन्होंने हमें उस दिन ट्रेन में दिया था।

वह एक ऐसा लोकप्रिय खेल था जिसका नाम कोई नहीं जानता, किन्तु हर आदमी जिन्दगी में कभी-न-कभी ज़रूर खेलता है। उसी तरह जैसे हर आदमी कभी-न-कभी शतरंज पर अपना हाथ आजमाता है, किन्तु यह खेल शतरंज के उस मृत, भयानक, शून्य और सामन्तवादी लॉजिक से कहीं अधिक मानवीय है, जो सिर्फ कुछ मनहूस पुतलों की अर्थहीन चाल की खातिर आदमी की मस्तिष्क-शक्ति को बेकार में बर्बाद करता है।

इस खेल में एक आदमी दरवाज़े से बाहर चला जाता है और बाकी लोग आपस में सलाह करके कोई चीज़ सोच लेते हैं। कोई भी चीज़ या आदमी या जानवर या पोप या ध्रुवतारा या सूटकेस में रखा खाने का सामान या खुद उस आदमी के बारे में, जो दरवाज़े के पीछे है और फिर उसे दुबारा भीतर बुला लेते हैं और उसे धीरे-धीरे, अप्रत्यक्ष सवालों द्वारा उस चीज़ या आदमी या जानवर का पता चलाना पड़ता है, जिसे उसके साथियों ने सोचा है। क्लर्क दरवाजे के पीछे चला गया और कपड़ों की दुकान के मैनेजर ने सुझाव रखा कि खुद क्लर्क को ही क्यों न चुना जाए? किन्तु गडरिये ने विरोध करते हुए कहा कि कोई भी ईडियट बहुत जल्दी इसका पता चला लेता है और खुद उसने सुझाव दिया कि पोप की चप्पल के बारे में सोचा जाए।

किन्तु क्लर्क की पत्नी ने आपत्ति की कि उस चप्पल के चिह्न, यानी उसके रंग-रूप के बारे में बहुत कम लोगों को मालूम है, "नहीं, हमें कोई

आसान-सी चीज़ सोचनी चाहिए, ताकि हममें से जो लोग यह खेल नहीं जानते, वे आसानी से समझ सकें।" क्लर्क की बीबी ने कहा।

मास्टर और मैनेजर की बीवी ने यह कहा था कि उन्होंने यह खेल पहले कभी नहीं खेला। मैनेजर की बीवी पर ही विश्वास किया जा सकता था, किन्तु मास्टर पर नहीं। मैंने उसकी ओर देखा।

मुझे सहसा वह खेल याद आया, जब कोई मोटा लड़का दो पतले छरहरे लड़कों के बीच खड़ा होकर कभी इधर, कभी उधर गेंद पकड़ने के लिए भागता है, लेकिन अपने शरीर से लाचार है और अन्त में निराश होकर उनसे दया और सहानुभूति की भीख माँगता है, ताकि वे उसे और न पिटाएं और अपनी इच्छा से उसके हाथ में गेंद फेंक दें।

वह सफेद झूठ बोल रहा था, बेशक उसे वह खेल आता था, किन्तु वह उसे खेलना नहीं चाहता था। मैं जानता था, क्यों कुछ लोग यह खेल खेलना नहीं चाहते। मोटे लोग नहीं, बल्कि ऐसे लोग जो दूसरे क्षेत्रों में काफी कुन्द दिमाग होते हैं। मास्टर काफी नर्वस दिखाई दे रहा था, किन्तु जब उसने पाया कि मैं उसे देख रहा हूं, तो उसने झट ध्यान हटाने के लिए सुझाव दिया कि अगर उसका सूटकेस चुना जाए, तो कैसा रहेगा।

"नहीं" क्लर्क की बीवी ने कहा, "यह तो बहुत आसान है। चलिए, 'रिक्रियेशन-सेण्टर' में जो पिंग-पांग की टेबल थी, उसे सोचा जाए।"

क्लर्क को भीतर बुलाया गया। उसने शुरू में पूछा कि वह चीज़ ठोस है या अमूर्त?

"ठोस चीज है।" क्लर्क की बीवी ने कहा। तुरन्त मास्टर ने हामी भरते हुए सिर हिलाया। मैनेजर की पत्नी से अनिश्चित ढंग से मुस्कराते हुए क्लर्क की बीवी को देखा। उसकी आंखों में उतनी ही अक्लमंदी थी, जितनी मास्टर की आंखों में, किन्तु मास्टर की तरह कोई घबराहट न होने के बजाय उसमें सिर्फ एक विमस्य से भरा अनजानापन था।

"क्या वह चीज चेकोस्लोवाकिया में है?" क्लर्क ने पूछा।

"हां।" मास्टर, मैनेजर की बीवी, गडरिये और क्लर्क की बीवी ने एक स्वर में कहा।

"प्राग में?" क्लर्क ने पूछा।

"नहीं।" सबने कहा, केवल मास्टर चुप रहा।

"क्या वह 'क' में है? 'क' उस शहर का नाम था, जहां से हम आ रहे थे और जहाँ 'रिक्रियेशन-सेण्टर' था।

"नहीं।" मास्टर ने कहा।

"अरे हाँ !" मैनेजर की बीवी ने अवहेलना-भरे स्वर में चीखते हुए कहा, "हमने यही तो तय किया था कि . . ."

"हिश् ! हां, वह चीज़ 'क' में है।" क्लर्क की बीवी ने अपने पति से कहा।

"फिर आपने इनकार क्यों किया, कि वह वहाँ नहीं है।" मैनेजर की पत्नी ने भोले स्वर में मास्टर से पूछा।

"अरे, मैं तो इन्हें यूं ही उलझाना चाहता था।" मास्टर ने कहा।

"नहीं-नहीं, ऐसा आपको बिल्कुल नहीं करना चाहिए।" क्लर्क की बीवी ने कहा, "वरना सारा खेल चौपट हो जाएगा।"

"मैंने तो खेल को ज्यादा दिलचस्प ही बनाने की गर्ज से कहा था।" मास्टर ने कहा।

"अरे, भाई, यह बात गलत है, खेल का मज़ा इसमें ही है कि उसके नियमों के मुताबिक सवाल-जवाब किए जाएँ । सीधे तौर से सवाल नहीं पूछने चाहिए। बस यह उस आदमी पर निर्भर करता है कि कितनी चतुराई से वह सवाल पूछता है।" क्लर्क की बीवी ने कहा।

"थोड़ा-बहुत उलझाने से खेल और मज़ेदार हो जाएगा।" मास्टर ने कहा।

"वाह, अफलातून साहब ! फिर आप चीज़ का पता कैसे लगा पाएँगे?" गडरिये ने कहा, "ठहरिए, जब आपकी बारी आएगी, तब पता चलेगा।"

"चलिए, आगे खेलते हैं।" क्लर्क की पत्नी ने कहा।

"क्या वह चीज़ 'रिक्रियेशन सेण्टर' में है?" क्लर्क ने पूछा और बाद में इसी तरह के तीन-चार चतुर सवालों के ज़रिए उसने पिंग-पाँग की टेबल का पता चला लिया। कुछ नादान लोगों को तो लगभग यह खेल 'दिव्य चक्षुओं' का चमत्कार-सा प्रतीत होगा, लेकिन असल में इसमें चमत्कार की कोई बात नहीं, कोई भी आदमी, जिसे ज़रा भी लॉजिक का अभ्यास और अनुभव है, आसानी से सही-सही अनुमान लगा सकता है। फिर भी कुछ लोग आश्चर्यचकित हुए बिना नहीं रहते।

"मिस्टर एम, आप तो बहुत चतुर आदमी निकले!" मैनेजर की पत्नी ने आँखें फैलाकर कहा।

"इसमें चतुराई की कोई बात नहीं।" क्लर्क ने विनम्र-भाव से कहा, 'सिर्फ़ सवाल ठीक ढंग से पूछने चाहिए।' बहुत सामान्य सवालों से धीरे-धीरे आपको ख़ास सवालों तक आना चाहिए और फिर आप चुटकी में पता चला सकते हैं।"

फिर हमने गडरिये को दरवाज़े के पीछे भेजा। मैंने सुझाव दिया कि लुई आर्मस्ट्रांग का बिगुल सोचा जाए। कुछ लोगों ने विरोध किया। कपड़ों की दुकान के मैनेजर की पत्नी ने इसलिए, क्योंकि उसे मालूम न था कि आर्मस्ट्रांग कौन है। और मास्टर ने, हालाँकि मालूम उसे भी न था, किन्तु बाद में मेरे सुझाव को मान लिया, और हमने गडरिये को भीतर बुलाया। गडरिये के धुंधले मस्तिष्क को शुरू-शुरू में चीज़ का अता-पता मालूम करने में काफ़ी दिक्क़त महसूस हुई, किन्तु जब एक प्रश्न के जवाब में उसे यह

मालूम हो गया कि वह चीज़ कितनी लम्बी-चौड़ी है, तब उसने अगला प्रश्न पूछा कि वह चीज़ किस काम आती है और फिर उसने पूछा कि वह चेकोस्लोवाकिया में है या बाहर? और अगले प्रश्न में उसने यह पूछा कि क्या वह अमरीका में तो नहीं है (क्योंकि चेकोस्लोवाकिया के अलावा, जहाँ वह जीने के लिए विवश था, सारी दुनिया में जहाँ हम सब रहने के लिए विवश थे, सिर्फ़ अमरीका ही एक जगह थी, जिसे वह जानता था और प्यार करता था)।

और जब हमने 'हाँ' कहा, तो सहसा उसका धुंधला मस्तिष्क आलोकित हो गया और उसके भीतर का सबसे बड़ा शौक़ जाग उठा और उसने झट पूछा कि क्या इस चीज़ को बजाया जाता है और ज्योंही उसे पता चला कि हाँ, बजाया जाता है, उसका रास्ता एकदम साफ़ हो गया। एक के बाद एक उसने ऐसे तर्कपूर्ण, पैने प्रश्न पूछने शुरू किए, जो उसके जीवन की केन्द्रीय रुचि के साथ जुड़े थे, उसके जीवन को अर्थ देते थे......और तब उसे पता चलाते देर न लगी कि इस वाद्य यंत्र का मालिक एक सुविख्यात जैज़ संगीतज्ञ है, कि संगीतज्ञ का वर्ण काला है और अन्त में विजयोल्लास में, किन्तु साथ-साथ बहुत श्रद्धा-भाव से उसने पूरा, लम्बा नाम लिया मानो किसी लम्बे, पूजनीय, प्रेरणादायक ख़िताब का नाम ले रहा हो, लुई सातख़्मो डिप्पर माऊथ आर्मस्ट्रांग।

मेरी आँखें मास्टर पर टिक गईं। वह चुप बैठा था और बार-बार घड़ी की ओर देख लेता था। जब गडरिये ने अपने सवाल ख़त्म किए, मास्टर ने अपने खँखारते स्वर में सुझाव दिया कि हमें अब कोई दूसरा खेल खेलना चाहिए।

"नहीं, जनाब, यह नहीं होगा।" गडरिये ने उद्धत स्वर में कहा, "सबकी बारी आनी चाहिए।"

"हाँ।" मैनेजर की थुलथुल पत्नी ने कहा।

"अब आपकी ही बारी सही......क्यों?" क्लर्क की पत्नी ने कहा।

"मैं?" मैनेजर की बीवी ने कहा।

"क्यों नहीं?"

"लेकिन भई मुझे तो यह खेल-वेल आता नहीं।" स्थूलकाय महिला बोलीं।

"अरे, इसमें रखा क्या है," क्लर्क की पत्नी ने कहा, "एक बार शुरू कीजिए, सब समझ में आ जाएगा।"

"अरे नहीं, मुझे माफ़ कीजिए......मैं कुछ नहीं समझ पाऊँगी। स्थूलकाय महिला ने अपने मुंह पर हाथ रख लिया, "मैं कुछ नहीं जानती।" उसने उन सीधी-सादी औरतों की तरह कहा, जिन्हें अपनी मूर्खता पर इतना विश्वास होता है कि वे जीवन के उस सहज विवेक से परिचित नहीं हो पातीं, जो उनके भीतर मौजूद होता है।"

सब लोग उसे फुसलाने की कोशिश कर रहे थे। स्थूलकाय महिला बराबर सिर हिलाते हुए कह रही थीं, "भई, मुझे छोड़ो.....मुझे नहीं आता, और सीखना मेरे बस के बाहर है।"

"अरे, जाइए भी......डर किस बात का है?" गडरिये ने कहा, "यहाँ हम सब एक जैसे ही बेवक़ूफ़ हैं, क्यों नहीं?" उसने मेरी ओर देखा।

मैं मुस्कराने लगा और मास्टर की ओर मेरी निगाहें मुड़ गईं। मास्टर वैसे ही चुप बैठा रहा। उसने स्थूलकाय महिला को मनवाने के लिए एक शब्द भी मुंह से न निकाला था, "अरे, खेलिए भी मिसेज़ एम।" मैंने कहा, "आप बेफिक्र रहिए, कुछ भी नहीं होगा।"

"अब आप कहते हैं, डॉक्टर साहब, तो चली जाती हूं।" मैनेजर की स्थूलकाय पत्नी ने कहा, फिर बड़ी मुश्किल से वह बर्थ से उठीं और कम्पार्टमेंट के बाहर चली गईं। शीशे के दरवाज़े के पीछे उनका चौड़ा, भोला और बेवक़ूफ़ी-भरा चेहरा दिखाई देता था। वह बड़े ध्यान से भीतर होने वाली बातों को सुनने की कोशिश कर रही थीं।

दरवाज़े के भीतर हमने कॉफी के पैकेट के बारे में तय किया, जो मैनेजर साहब की सूचना के अनुसार उनकी पत्नी के सूटकेस में रखा था। फिर हमने उन्हें भीतर आने के लिए कहा। भीतर घुसते ही उन्होंने चारों तरफ देखा, फिर बड़ी कठिनाई से अपनी सीट पर बैठकर मुंह खोला, "क्या....क्या चीज़ है?" उन्होंने पूरा ज़ोर लगाकर पूछा।

"इस तरह आपको नहीं पूछना चाहिए......" क्लर्क की पत्नी ने समझाते हुए कहा, "आप वैसे ही सवाल पूछिए, जैसे मेरे पति ने पूछे थे या इन महाशय ने......" उसने गडरिये की ओर इशारा किया।

"लेकिन भई......जब मुझे पूछना आता ही नहीं?" स्थूलकाय महिला ने अभ्यर्थना-भरे स्वर में कहा।

"अरे, कोशिश तो करिए......जल्दी की ज़रूरत नहीं है, आराम से पूछिए।" क्लर्क की बीवी ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा।

स्थूलकाय महिला खूब ध्यान लगाकर सोचने लगीं। उनके गोल-मटोल चिकने गालों पर पसीने की बूँदें चमक रही थीं। काफ़ी लम्बी चेष्टा के बाद उनका स्वर अचानक बाहर आया, "यहाँ है?"

"देखिए, अब आप कैसी ठीक-से पूछ रही हैं। हाँ, यहाँ है, हमारे कम्पार्टमेंट में।" क्लर्क की पत्नी ने कहा।

स्थूलकाय महिला ने चारों तरफ़ निगाहें दौड़ाईं। उनके चेहरे के भोंदूपन में आँखें खो-सी गई थीं, एक ऐसा भोंदूपन जो चेहरे का अलंकार जान पड़ता था। कम्पार्टमेंट के हर व्यक्ति और वस्तु पर उनकी आँखें घूम रही थीं। गडरिये के फ़ैशनेबल सूटकेस पर, क्लर्क की बीवी के रेडियो पर, फ़ैक्ट्री-कारीगर के ख़ामोश चेहरे पर, मेरी रेशमी जुराबों पर और अन्त में मास्टर के पीले चेहरे पर, जहाँ दो मनहूस आँखें एक असीम घृणा में चमक रही थीं।

"क्या......क्या वह कोई खाने की चीज़ है?" उसने पूछा।

"हाँ।" हम सबने एक स्वर में कहा।

मैनेजर की स्थूलकाय पत्नी खुशी से मुस्कराने लगीं।

"बस, मैंने पता चला लिया।" उन्होंने कहा।

"हाँ.....लेकिन आपको अभी और अनुमान लगाना पड़ेगा।" क्लर्क की पत्नी ने कहा।

"और......और क्यों?" स्थूलकाय महिला ने पूछा।

"अभी आपने सिर्फ चीज़ की प्रकृति के बारे में पता चलाया है, लेकिन वह क्या चीज़ है, इस बारे में नहीं।" क्लर्क की पत्नी ने कहा।

"प्रकृति.....कैसी प्रकृति?" मैनेजर की पत्नी ने कुछ भी न समझते हुए पूछा।

"आप जानती हैं कि वह चीज़ खाने की है, लेकिन नहीं जानतीं कि वह क्या है।" गडरिये ने कहा।

"अहा, समझी!" महिला ने कहा और फिर चारों तरफ देखा, "लेकिन यहाँ तो खाने की कोई चीज़ दिखाई नहीं देती।"

"ज़रूरी नहीं, दिखाई दे......वह कहीं छिपी हुई भी हो सकती है।" क्लर्क ने कहा।

"लेकिन अगर छिपी हुई है, तो मैं पता कैसे चला सकती हूँ।" मोटी औरत ने पूछा।

"आपको सही-सही पूछना चाहिए।" क्लर्क की बीवी ने कहा।

"पूछना?"

"हाँ, आपको ठीक-ठीक पता चलाना चाहिए कि वह चीज़ यहाँ कम्पार्टमेंट में कहाँ है?"

"ठीक-ठीक?" कपड़ों की दुकान के मैनेजर की पत्नी आँखें

गिड़गिड़ाती हुई सी क्लर्क की बीवी के चेहरे पर ठहर गईं।

"आप पूछिए कि वह ज़मीन पर है, या सीट पर है, या असबाब रखने की बर्थ पर।"

"क्या वह सूटकेस में है?" मोटी महिला ने जल्दी से पूछा।

"हाँ।" सबने एक स्वर में कहा।

"ज़रूर केक हैं।" मोटी महिला आह्लाद-भरे स्वर में चिहुँक उठीं, किंतु दूसरे ही क्षण उन्हें भान हो गया कि वह गलती पर हैं। फिर हमारे विरोध की परवाह किए बिना कि उसे प्रत्यक्ष तौर से सवाल नहीं पूछने चाहिए, वह अपने सूटकेस में रखी जाने की चीज़ों को एक के बाद एक गिनाने लगीं। आख़ीर में उन्होंने सही चीज़ का नाम ले लिया, और तब खुशी की झोंक में खिलखिलाकर हँसने लगी, "अहा, मैंने पता चला लिया!" उन्होंने आह्लाद-भरे स्वर में कहा और फिर खुशी में चमकती, उनकी मूढ़ आँखें हम पर ठहर गईं।

"देखिए, मैंने आपसे क्या कहा था?" क्लर्क की पत्नी ने कहा।

मोटी महिला ने अपने पति की बगल में हाथ डालकर कहा, "वाह-खूब खेल है!"

और अब मैंने देखा कि बदला लेने का क्षण आ पहुँचा है। मुझे उस क्षण महसूस हुआ कि वहीं दूसरी जगह, दूसरे कम्पार्टमेंट में, और फिर भी वहाँ मेरे सामने, एमेके बैठी है, भयानक अकेलेपन और जादुई चॉक के दायरों से घिरी हुई, दोबारा अपने अतीत से आक्रांत, हंगरी के धूल-धूसरित अकेले कगारों पर भटकती हुई, जहाँ वह युग-युगांतर तक बाग़ के माली के अंधविश्वासों और होटल के मालिक के भयावह दुःस्वप्नों द्वारा तड़पती रहेगी।

"चलिए, अब मास्टर जी की बारी......" मैंने कहा।

मास्टर सहसा तन गया। बहुत आनाकानी की। कहने लगा कि उसने यह खेल कभी खेला नहीं और न ही उसमें उसे कोई दिलचस्पी है, किंतु कोई उसके बहानों को मानने के लिए तैयार न हुआ और आख़ीर में उसे बाहर जाना पड़ा। शीशे के दरवाज़े के पीछे उसका कुन्द चेहरा, नीचे लटकता हुआ निचला होंठ और कुन्द मनहूस आँखें दिखाई दे रही थीं।

हमने 'ख़ुद मास्टर' को चुनने का ही निर्णय लिया। यह पुरानी ट्रिक थी और अनुमान लगाना मुश्किल न था। इस बार किसी ने विरोध न किया। हमने सिर हिलाया और मास्टर भीतर आ गया।

"कहिए, क्या चीज़ है?" उसने मज़ाक करने की कोशिश की।

"ठीक-ठीक पूछिए, मास्टर साहब।" स्थूलकाय महिला ने कहा।

मास्टर अपनी सीट पर बैठ गया। मैंने देखा कि उसके दिमाग़ के पहिए एक ही जगह पर रपटते जा रहे हैं और यह स्वाभाविक भी था। उसके मस्तिष्क का घेरा बहुत पहले कुछ रटी-रटाई सूक्तियों, या शारीरिक भोग के चंद घिसे-पिटे नियमों के आगे नहीं जाता था। वह किसी और चीज़ के काबिल न था। आसान-से-आसान लॉजिक उसकी क्षमता के बाहर था। मैं यह बात अच्छी तरह जानता था।

"क्या वह चीज़ मकान है?" उसका स्वर भीतर से निचुड़ता हुआ बाहर आया।

आस-पास बैठे दूसरे लोग, जो उससे अच्छी तरह वाक़िफ नहीं थे, काफ़ी दुविधा में पड़ गए। वे एकाएक समझ न पाए कि मास्टर क्या अब भी मज़ाक कर रहा है, या सचमुच गम्भीर है। सिर्फ़ मैं जानता था कि वह कितना गया-गुज़रा है।

"अच्छा अब बकवास बंद कीजिए और ठीक ढंग से सवाल पूछिए।" कुछ देर बार गडरिये ने कहा।

मास्टर को पसीना छूटने लगा। उसकी आँखों की काली, अप्रीतिकर

पुतलियों में एक ऐसी चेष्टा के चिह्न दिखाई दे रहे थे, जिसके लिए उसका शरीर या मस्तिष्क क़ाबिल न था।

"क्या वह......" उसने धीरे से कहा, "रेलगाड़ी तो नहीं है?"

"क्या बकते हो?" गडरिये ने भभकते हुए कहा, "ठीक ढंग से सवाल क्यों नहीं पूछते?"

ग़ुस्से में मास्टर का चेहरा लाल हो गया।

"ठीक ढंग से ही तो पूछ रहा हूं......" उसने कहा।

इस गँवार पर, जिसने रंग-बिरंगी जुराबें पहन रखी थीं और जिसकी उम्र भी कुछ ज़्यादा न थी, अपनी मास्टराना हुकूमत जतलाने की आकांक्षा मास्टर की आँखों में चमकने लगी।

"नहीं, आप ठीक सवाल नहीं पूछ रहे।" गडरिये ने कहा, "आप काफ़ी फ़िज़ूल ढंग से पूछ रहे हैं। आपको सीधे-सीधे ऐसे नहीं पूछना चाहिए कि यह गाय है? या यह साँड है? आपको पूछना चाहिए, कैसी चीज़ है, कहाँ है.....वग़ैरह-वग़ैरह।"

"कहाँ है?" मास्टर ने जल्दी से पूछा।

"अरे, ऐसे नहीं......" गडरिया कुछ कहने जा रहा था कि बीच में ही क्लर्क की पत्नी ने उसे टोक दिया।

"देखिए, मास्टर साहब, आपको ऐसे, सवाल पूछने चाहिए, जिनका जवाब हाँ या न में दिया जा सके, समझ गए?"

"हाँ-हाँ, क्यों नहीं।" मास्टर ने कहा। सब लोग चुप हो गए। देर तक ख़ामोशी छाई रही। मास्टर अजीब यातनामय संकट में फँसा था।

"तो अब कुछ पूछिए न मास्टर साहब?" मैनेजर की स्थूलकाय पत्नी ने बेसब्री से कहा। वह उस खेल को देखने के लिए बहुत उत्सुक थीं, जिसमें उन्होंने इतनी बड़ी सफलता हासिल की थी।

मास्टर ने आँखें ऊपर उठायीं।

"क्या......क्या कोई खाने की चीज़ है?" उसने पूछा।

सब हँसने लगे और मास्टर का चेहरा लाल हो गया। अब वह सचमुच अपमानित महसूस करने लगा था।

"नहीं।" दोनों औरतों ने ऊँचे स्वर में कहा।

"अरे हाँ!" गडरिये ने कहा।

"कैसे?" मोटी महिला ने पूछा।

"क्यों नहीं!" गडरिये ने कहा, "दुनिया में ऐसे लोग हैं, जो खाते भी हैं।"

"ठीक है," क्लर्क की पत्नी ने कहा, "लेकिन यहाँ हम उन पर विचार नहीं कर सकते, क्योंकि हमारे देश में ऐसा रिवाज नहीं है।"

"क्या कह रही हैं?" गडरिये ने कहा, "रिवाज़ का क्या मतलब? उसने पूछा है कि क्या वह खाने की चीज़ है? मैं कहता हूँ, हाँ है। जब उसे जुलू के जंगली खा सकते हैं, तो वह खाने की चीज़ ठहरी, नहीं?"

मैंने मास्टर को देखा। वह उलझन में पड़ा हर व्यक्ति के चेहरे को देख रहा था। खुद उसका चेहरा गुस्से में तमक रहा था। गडरिये और क्लर्क की पत्नी के बीच बहस जारी थी।

आख़िर मास्टर से न रहा गया, "अच्छा भई, मैं हार मानता हूं।"

"नहीं-नहीं, मास्टर साहब, आप ऐसा नहीं कर सकते।" मोटी महिला ने चीखते हुए कहा।

"क्यों नहीं कर सकता?" मास्टर ने कहा, "जब आप लोग ख़ुद नहीं जानते कि वह खाने की चीज़ है या नहीं।"

"जनाब, हमने तो चखकर देखा नहीं, समझे!" गडरिये ने कहा, "मुमकिन है वह काफ़ी सख्त चीज़ है, या इतनी ख़राब है कि खाने के

बाद ही एकदम उलटी हो जाए।" मैंने देखा कि उसके स्वर में जन्मजात गायक की ध्वनि तो है ही, किंतु उसके अलावा मास्टर के प्रति गहरी हिक़ारत का भाव भी है। एक ऐसी घृणा, जो शायद उसे अपने पुरखों से विरासत में मिली होगी, जिन्हें अपने रंग-बिरंगे कपड़ों के प्रदर्शन और जीवन की अन्य सतही ख़ुशियों के लिए किसी ज़माने में अध्यापन-पेशे के लोगों ने अपमानित किया होगा।

"देखिए, बात यह है," फ़ैक्ट्री के कारीगर ने कहा (वह अब तक ख़ामोश बैठा था। शायद जवानी के दिनों में उसने 'ज्ञान का भंडार' भरने में ज़्यादा समय खर्च नहीं किया था, जिसके आधार पर मास्टर हर महीने मोटी तनख़्वाह ऐंठ लेता था, संभव है, उसने जीवन में स्कूल की शक्ल तक नहीं देखी थी और अब जीवन-निर्वाह के लिए दिन-रात कड़ी मेहनत करता था, किंतु अवकाश के इने-गिने क्षणों में हर दिन कुछ-न-कुछ सोचता था, शायद कुछ पढ़ता भी हो। एक ऐसा आदमी, जिसमें हास्य-विनोद की प्रवृत्ति ज़्यादा नहीं थी, किन्तु इतनी क्षमता ज़रूर थी कि ईमानदारी से, बोझिल ढंग से, किन्तु तर्कसंगत तरीक़े से चीज़ों के बारे में सोच सके, हालाँकि अपने विचारों को प्रकट करने में उसे शब्दों का अभाव अवश्य महसूस होता होगा) "देखिए, बात यह है," उसने कहा, "हमारे देश में तो उसे कोई खाता नहीं, लेकिन दुनिया में ऐसे देश हैं, जहाँ आज भी लोग उसका भक्षण करते हैं। बस, इतना ही....."

मास्टर ने तीखी, नफ़रत में बिलबिलाती आँखों से अपने नये दुश्मन को देखा, हालाँकि कारीगर ने बड़े आदर-भाव से अपनी बात मास्टर से कही थी। अध्यापकों के पेशे, उनकी शिक्षा-दीक्षा, सूझ-बूझ और न्यायप्रियता के प्रति आदर-भाव उसने अपने माता-पिता और बड़ों से सीखा था और बाद में स्वयं अपने बच्चों को सिखाया था, किन्तु उसके लिए मास्टर की आँखों में महज़ हिक़ारत के अलावा कुछ भी न था।

"मैं हार मान लेता हूं, बस।" मास्टर ने दोबारा ऊंचे भाव से कहा।

"अरे ज़रा ठहरिए, मास्टर साहब! इतनी आसान-सी बात है और आप......"

"नहीं, मैं हार मान लेता हूं। कोई फ़ायदा नहीं आपसे झगड़ने का, जब आप खुद नहीं जानते कि वह खाने की चीज़ है, या नहीं।" मास्टर ने कहा।

बड़ी मुश्किल से उसे फिर खेलने के लिए राज़ी किया गया। मोटी महिला को खेल में इतना मज़ा आ रहा था कि हँसते-हँसते उसकी आँखों में आँसू आ गए।

गुस्से में मास्टर का चेहरा स्याह पड़ गया था और वह होंठों-ही-होंठों में कुछ भुनभुना रहा था। आख़िर लोगों के कहने-सुनने पर वह फिर सोचने की कोशिश करने लगा। उसके चेहरे के बाहरी हाव-भाव को देखकर लगता था, जैसे कोई ख़ाली भट्टी में हथौड़ा घुमा रहा हो।

"क्या....मोटर तो नहीं है?" बहुत देर बाद उसने कहा।

गडरिया उफन पड़ा, "यार, तुम आदमी हो या पाजामा!" मास्टर के प्रति जो भी उसके भाव थे, वे साफ़ तरीक़े से, बिना किसी छिपाव-दुराव के, उसके चेहरे पर छलक आए, "कहीं लोग मोटर खाते हैं, ऐसा सुना है?"

"जनाब, ज़रा ज़ुबान सँभालकर बात कीजिए!" मास्टर गडरिये पर बरस पड़ा।

"वाह साहब, मैंने ऐसी कौन-सी बात कह दी कि आपका मिज़ाज बिगड़ गया, या आप शीशे की तरह नाज़ुक हैं कि हाथ लगाते ही कड़क जाएँगे?" गडरिये ने कहा।

"मैं नहीं खेलता......" मास्टर ने आहत अभिमान के स्वर में कहा, "मुझे बेवजह अपनी तौहीन कराने का शौक नहीं चर्राया!"

चारों तरफ से विरोध का ज्वार उठा और सबका समर्थन पाकर मैंने बीच में हाथ डाला।

"ज़रा इधर देखिए!" मैंने कहा, "बात सिर्फ़ इतनी-सी है कि आप ज़रा तर्कसंगत ढंग से सवालों को सोचिए, बस और कुछ नहीं।"

मास्टर ने अपनी निगाहें मुझ पर चुभा दीं।

"मैंने एक बार कह दिया कि नहीं खेलूँगा, क़िस्सा ख़त्म!"

"हाय, मास्टर साहब!" मैनेजर की पत्नी ने सिर हिलाते हुए कहा, "आप नहीं खेलेंगे, तो आपके लिए बड़ी ग़ैरत की बात होगी!" उसने समूची स्थिति को साफ़, नंगे शब्दों में कह दिया। वह अब भी उस मासूम बच्चे की तरह थी, जिसे बादशाह की नई पोशाक दिखाई नहीं देती।

"डॉक्टर साहब आपको अच्छी तरह समझा देंगे......" क्लर्क की पत्नी ने कहा, "इस तरह बीच में आप खेल छोड़ देंगे, तो सारा मज़ा किरकिरा हो जाएगा।"

मास्टर धीरे से गुर्राया।

"देखिए, पहले आपको सामान्य क़िस्म की चीज़ों के बारे में सोचना चाहिए" मैंने कहा, "फिर धीरे-धीरे ख़ास चीज़ों को पकड़ने की कोशिश कीजिए, समझे आप!"

मास्टर कुछ नहीं बोला।

"देखिए, ज़रा समझने की कोशिश कीजिए।" मैंने मीठे स्वर में कहा, "सबसे पहले कोई बहुत सामान्य चीज़ सोचिए और फिर उससे एक विशेष, लोकल बिन्दु पर केन्द्रित करने की कोशिश कीजिए, धीरे-धीरे अपने सवालों के जरिए उसे ज़्यादा-से-ज़्यादा स्थानीय बनाते जाइए। आख़ीर में आप एकदम सही चीज़ को पकड़ लेंगे।" मैंने प्रश्न-भरी निगाह से उसकी ओर देखा।

वह कुछ भी नहीं समझा था।

"सबसे अच्छी बात यह होगी," मैंने कहा, "कि पहले आप यह पता

चलाइए कि वह चीज़ अमूर्त (एबस्ट्रेक्ट) है, या ठोस।"

मास्टर चुप बैठा रहा।

"चलिए ज़रा कोशिश कीजिए। पहले यूँ ही कोई सवाल पूछिए, सिर्फ़ आज़माइश के लिए।" मैंने कहा, "चीज़ को स्थानीय तौर से निर्धारित करने की कोशिश कीजिए।"

मास्टर ने नफरत से होंठ हिलाए।

"क्या वह......क्या वह चीज़ काली है?" मास्टर ने पूछा।

गडरिया ठहाका मारकर हँस पड़ा। हँसते-हँसते उसने अपनी टाँगें हवा में उठा दीं। मुझे डर लगा कि कहीं वह अपने बूट मास्टर की नाक पर न दे मारे।

"यह तो आपने एकदम बहुत ठोस सवाल पूछ डाला!" मैंने प्रेम-भाव से कहा, "चीज़ को 'लोकलाइज़' करने का तरीक़ा अभी तक आपकी समझ में नहीं आया.....मास्टर साहब, याद रखिए, लोकलाइज़...... लोकलाइज़..... लोकलाइज़!" मैं बराबर एक चक्कर में बोलता गया।

"क्या वह इंजन है?" मास्टर ने फिर गधेपन की बात कही।

गडरिया फट पड़ा।

"ईश्वर के लिए यह क्यों नहीं पूछते कि वह कहाँ है?"

मास्टर ने गडरिये को एड़ी से चोटी तक देखा।

"यह तो मैंने पहले ही पूछा था।" मास्टर ने ऐसे स्वर में कहा, जिसमें झगड़ा करने की भनक थी।

"पूछा था, लेकिन बेहूदे ढंग से।" गडरिये ने कहा, "भले आदमी, कहीं इस तरह पूछा जाता है कि कहाँ है?" उसने मास्टर के स्वर की नक़ल उतारते हुए कहा, "आपको पूछना चाहिए, क्या वह यहाँ है? या....या वह......" वह जल्दी ही कोई मज़ाक़ की चीज़ कहना चाहता था, किन्तु उस

क्षण उसे सिर्फ़ वह चीज़ याद आई, जिसे कुछ लोग, या शायद सब लोग दुनिया की सबसे विनोदपूर्ण चीज़ समझते हैं, "या वह......में है......नहीं?"

"अरे, भाई साहब, छिः-छिः !" मैनेजर की पत्नी वह शब्द सुनकर ही-ही करते हुए हँस पड़ी।

"नहीं खेलता!" मास्टर ने कहा, "अगर लोग शिष्ट तरीक़े से पेश नहीं आते, तो उनके साथ खेलना बेकार है।" उसने अध्यापक की ऊँची हैसियत से घोषणा की।

किन्तु बाद में उसे खेलना ही पड़ा। लोगों ने उसे खेलने के लिए मजबूर किया। वे उससे उस समय तक खेलते रहे, जब तक पार्दूवित्से नहीं आ गया, जहाँ उसे, कपड़ों की दूकान के मैनेजर और उनकी पत्नी को उतरना था। शायद ही पहले कभी उस खेल से मेरा या गडरिये और क्लर्क की पत्नी का इतना मनोरंजन हुआ था, जितना उस दिन ट्रेन में, क्योंकि वह महज़ मनोरंजन नहीं था, वह ईश्वर की चक्की की तरह था, जो बराबर घूम रही थी और जिसमें मास्टर तिल-तिल करके पिस रहा था।

आख़िर उसके ऊल-जुलूल सवालों में किसी तरह का क्रम या नियम न रहा। जब उसने पूछा, "क्या उस चीज़ से बदबू आती है?" तो गडरिये की आत्मा में कटाक्षों का सोता-सा फूट पड़ा। हर क्षण उसकी रंग-बिरंगी जुर्राबें आग की लपटों-सी छत की ओर उठ जाती थीं।

मास्टर के इस प्रश्न ने कि "क्या वह सचमुच कोई चीज़ है?" मुझे सोचने के लिए मजबूर किया, क्योंकि मैं सचमुच निश्चय नहीं कर सका कि यह मास्टर आख़िर है क्या चीज़, एक ऐसा प्राणी, जो आजीवन एक ऐसी 'नैतिकता' पर जीवित रहता है, जिसके कोई क़ानून-नियम नहीं, न ही यीशु मसीह के और न मार्क्स के, जिसकी कोई नैतिकता नहीं, मानव-जाति की उतनी नैतिकता भी नहीं कि जैसा व्यवहार तुम दूसरों से नहीं चाहते, वैसा व्यवहार दूसरों के साथ न करो। एक मामूली-सा नियम जिसे लोग

युग-युगान्तर से मानते आए हैं, उसके लिए अर्थहीन था। दरअसल उसका समूचा जीवन ही किसी अर्थ या उद्देश्य से शून्य था। महज़ अंतड़ियों और आदतों का पुंज मात्र पिंजरे में बन्द उस गिलहरी से भी गया-बीता, जो टीन के सींखचों को अपने गुलाबी पंजों से कुरेदती हुई बाहर आने का निष्फल प्रयत्न करती है। कम-से-कम उसे बाहर की स्वतन्त्रता का मूल्य मालूम है।

किन्तु मास्टर ऐसा भयावह जन्तु था, जिसे स्वतन्त्रता की ज़रूरत नहीं थी। स्वतन्त्रता, जो हमारे जीवन को सबसे अधिक अर्थवान बनाती है, किन्तु जिसे केवल अपने भीतर के उस विवेक में ही पाया जा सकता है, जो हमारी आवश्यकता के प्रति सचेत है। यह वह 'स्वतन्त्रता' नहीं थी, जिसे राष्ट्रीय सोशलिस्ट पार्टियों की सभाओं में नोट की तरह उछाला जाता है। स्वतन्त्रता, जो आवश्यक है, ताकि हम अपना ज्ञान-विवेक छोड़कर पागल न हो जाएं, अगर हम सचमुच मनुष्य हैं। वह मनुष्य नहीं था। बेशक मनुष्य से ऊपर नहीं, किन्तु मुझे हमेशा लगता था कि वह मनुष्य से कुछ नीचे है।

ऐसे लोग दुनिया में हमेशा मौजूद रहते हैं, यीशु के ग़रीबों की तरह। फ़र्क़ इतना ही है कि वे ग़रीब या असहाय नहीं होते। वे सिर्फ़ नीचे, मानवीय स्तर से नीचे किसी दूसरे स्तर पर जीते हैं। वे छोटे या बड़े, मोटे या दुबले जीवों, प्यार-मोहब्बत, वफादारी, ईमानदारी, 'ऑलटर-ईगो' जैसे मानवीय गुणों और विशेषताओं से अछूते रहते हैं, जिनके आधार पर मनुष्य और जानवरों की नस्ल कायम रहती है (सचेतन रूप से मनुष्यों में अचेतन रूप से जानवरों, गिलहरियों और सफ़ेद चूहों में, जो अपने लघु प्राकृतिक जीवन में कभी एक-दूसरे का गला नहीं घोटते)। ये लोग हर जगह, बिना किसी शर्म या झिझक के, अपना सिक्का जमाना चाहते हैं, दूसरों पर अपने काल्पनिक अधिकार जतलाना चाहते हैं, जिन्हें वे अपने जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं। वे हमेशा सही हैं, ऐसी डींग मारते हुए वे हर जगह अपने कमीनेपन का परिचय देते हैं, वे हमेशा दूसरों के बारे में अपनी राय देने के लिए तैयार रहते हैं, किन्तु अपने सौ-फ़ीसदी मुकम्मिलपन पर एक क्षण के

लिए भी सन्देह नहीं करते। दुनिया में उनके अस्तित्व का क्या अर्थ है, इस बारे में वे एक क्षण के लिए भी विचार करना ज़रूरी नहीं समझते, ईसाई धर्म और नैतिकता को पुराने ज़माने के संस्कार मानकर उनकी खिल्ली उड़ाना नहीं भूलते, किन्तु कहीं अपने बहुत भीतर के कम्युनिज्म से गहरी नफरत करते हैं, क्योंकि वह उन्हें परजीवी बनने की स्वतन्त्रता नहीं देता, फिर उनमें से कुछ लोग कम्युनिज़्म पर भी विजय पा लेते हैं और उसे भी अपनी आजीविका का साधन बना लेते हैं, उन्हें एक लम्हे के लिए भी इस चीज़ का अहसास नहीं होता कि वे खोखले हैं। खाल और हड्डियों के बीच घिरा हुआ एक बदबूदार खालीपन और कुछ नहीं।

ऐसे लोग अपने पीछे हमेशा छोटे-बड़े कुकर्मों के चिह्न छोड़ जाते हैं। दूसरे लोगों की तहस-नहस ज़िन्दगियाँ, काम की निरर्थक तबाही, अधबीच में छोड़े हुए कार्य, वीभत्स तलाक, अपराध, कुछ और ग़लीज़ क़िस्म का सनकीपन।

इन लोगों के कारण ही नरक और शाश्वत सज़ाओं का अस्तित्व आवश्यक हुआ, ताकि दुनिया में हमेशा ही अन्याय का निविड़ अँधेरा क़ायम रहे, क्योंकि कम्युनिज़्म का समूचा भविष्य भी यातना के उस अथाह सागर का मुआवज़ा नहीं चुका सकता, जो इन लोगों ने इतने अदृश्य ढंग से पिछले आठ-दस हज़ार वर्ष के दौरान मानवीयता पर लादा है।

ये लोग हर जगह अपनी जुगाड़ भिड़ा लेते हैं और कभी तकलीफ़ का सामना नहीं करते, जबकि दूसरे लोग बुरी-से-बुरी यातना सहते हैं। वे हर जगह सत्य का नारा बुलन्द करते हैं, जबकि असलियत में उनकी आँखों में सत्य का दो कौड़ी मूल्य भी नहीं, कापुरुष, दोस्तों के साथ विश्वासघात करने वाले, स्त्रियों पर पाशविक अत्याचार करने वाले, प्रेमिकाओं को धोखा देने वाले, बच्चों को आतंकित करने वाले, अपने रास्ते पर खड़े समस्त विरोधियों को नष्ट करने वाले, शायद ही कोई उनकी राक्षसी घृणा से बच पाता हो और इन सब जुल्मों के लिए उन्हें

कारण की ज़रूरत नहीं, उन्हें अगर ज़रूरत है, तो सिर्फ़ ख़ून की, एक भयानक प्रतिशोध की, जो क्रूर और प्रत्यक्ष भी हो सकती है, या क़ानून-बन्द समाज में क़ानूनी वेष भी धारण कर सकती है।

आह, ऐसे लोग हमारे बीच आज भी मौजूद हैं......! यीशु मसीह के ग़रीबों की तरह......हमारी सभ्यता पर एक क्रूर लांछन, हमारे सुन्दर शब्दों का मज़ाक़ उड़ाते हुए, हमारे दर्प का दर्पण, हमारी आत्मतुष्ट शान्ति को चेतावनी देने वाले.......कापुरुष, हमारे दुश्मन, विध्वंसक हानिप्रद, कापुरुष हत्यारे!

आख़िर फैक्ट्री के उस कारीगर ने मास्टर को उस 'चीज़' का नाम बताया, जिसे हमने सोचा था। असीम धैर्य और सीधे-सादे तर्कों द्वारा वह मास्टर को अपमान की अन्तिम मंज़िल तक ले गया, जहाँ वह पहचान सकता था कि इतनी देर तक वह जिस 'चीज़' के आस-पास भटकता रहा था, वह कोई और चीज़ न होकर वह खुद था, कि वह स्वयं अपने उन मूर्खतापूर्ण प्रश्नों का उत्तर था, जो उसने पूछे थे और जिनके कारण उसे अपने जीवन की सबसे गहरी जहालत सहनी पड़ी थी, अगर उसके 'जीवन' को जीवन कहा जा सके। पादूबित्से के स्टेशन पर वह उतर गया और विदा होते समय उसने मुझसे हाथ भी न मिलाया।

हाँ, इस तरह मैंने बदला चुकाया, किन्तु जब मैं प्राग आया और स्टेशन के अण्डरग्राउण्ड गलियारे को पार करता हुआ गेट तक पहुँचा, जहाँ लड़कियों के चेहरे अँगूरों की तरह चमक रहे थे, महानगर के वे चेहरे, गुलाबी पाउडर में ढके, प्राग के कोमल और सुन्दर चेहरे और बाद में मैं उस शहर की रंगीन, अंधेरी, शोरगुल से भरी गलियों में खो गया, जहाँ हर नुक्कड़ पर गर्मियों की झीनी स्कर्ट घंटियों के रंगीन स्वरों-सी झनझना जाती थीं।

और फिर समय का बहाव और दैनिक परेशानियों का जमघट और फिर वह दिन जब मैं मागरिता से गुप्त रूप से मिला था, मिशाक रेस्तराँ के एक अकेले केबिन में हम बैठे थे, और वह नीले और सफेद रंग की धारीदार

पोशाक पहनकर मुझसे मिलने आई थी, टॉफी-रंग की क्रीम से उसका चेहरा एकदम ताज़ा लग रहा था और वह अपनी कोमल, प्यार भरी आँखों से बार-बार मुझे निहार लेती थी।

और मैं दुबारा महानगर के उस विराट खेल में फँस गया था, जहाँ धोखाधड़ी, छोटी-छोटी क्रूरताएँ और छलनाएँ, झूठ और बहाने जायज़ थे, किन्तु जिनके पीछे एक खोए हुए बहिश्त की तमन्ना बार-बार फड़क उठती थी, एक ऐसे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को पाने की आकाँक्षा, जो बहुत पहले कभी अतीत में रहा होगा और जो शायद कभी-कभी भविष्य में प्रकट हो सकेगा, किन्तु फिलहाल नहीं। फिलहाल महज़ हुकूमत के विशाल और बोझिल हथियार की मदद से जन्म लेता हुआ समाजवाद था (शायद वह 'सम्पूर्ण आदमी' इस समय चिथड़ों में लिपटा हुआ उस कारीगर के साथ काम कर रहा होगा, किन्तु मैं कह नहीं सकता वह कौन है? मुझे कुछ मालूम नहीं, मैं कुछ भी नहीं जानता)।

और एमेके.....वह मेरे लिए दोबारा एक स्वप्न, एक पौराणिक गाथा में बदल गई और कभी-कभी मुझे इस पर भी सन्देह होने लगता था कि वह कहीं जीवित है और मैं उससे कभी मिला था, एक अजनबी नियति की सुदूर गूँज की तरह, जिसकी वास्तविकता में मेरा विश्वास धीरे-धीरे मरने लगा था।

मैंने उसे कोई पत्र नहीं लिखा, न ही मैंने उसे वे किताबें भेजीं, जिनका वायदा मैंने उससे किया था, दर्शन की किताबें, सुकरात से लेकर एंगल्स तक का संक्षिप्त विचार-कोश। उसके शहर कोशित्से भी मैं कभी न जा सका।

और कुछ अर्से बाद, बहुत जल्दी ही मेरे भीतर उस स्मृति, उस गाथा के प्रति उदासीनता उत्पन्न होने लगी, उदासीनता, जिसके बिना इस दुनिया में जी पाना बहुत मुश्किल है, जहाँ रोज़-बरोज़ हमारे जैसे ही रक्त-माँस के प्राणी तपेदिक़ और कैन्सर से मर जाते हैं, जेलों और यातना शिविरों में ख़त्म हो जाते हैं, पुरानी दुनिया के सुदूर ट्रॉपिक मैदानों में लड़ते-लड़ते अपने प्राण

त्याग देते हैं, निराश प्रेम के पागलपन में या ज़रा-सी तकलीफ या विपत्ति के बोझ तले दम तोड़ देते हैं। उदासीनता, जो हमारी माँ है, हमारी मुक्ति है, हमारी मृत्यु है।

इस तरह कहीं किसी घटना या गाथा का जन्म होता है और कोई उसे कहता नहीं......और फिर कहीं आदमी जीता है, गर्म और सूनी दोपहरें आती हैं और चली जाती हैं, आदमी बूढ़ा हो जाता है, अकेला रह जाता है, अपनी आख़िरी साँसें गिनता है। कब्र पर केवल एक तख़्ती रह जाती है, सिर्फ़ एक नाम। शायद तख़्ती भी नहीं, नाम भी नहीं। कुछ वर्षों तक कोई अन्य आदमी उस घटना को, उस गाथा को, अपने साथ लिये चलता है और फिर वह भी मर जाता है.....और दूसरे लोग कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं। नाम मुर्झा जाता है और उसके साथ.......वह घटना भी, वह गाथा भी। आदमी के बाद कुछ भी शेष नहीं रहता। न नाम, न कोई स्मृति, ख़ालीपन भी नहीं। कुछ भी नहीं।

किन्तु फिर भी शायद कहीं कुछ बचा रह जाएगा। कम-से-कम कोई छाप, कम-से-कम उन आँसुओं, उस लावण्य, उस मिठास, उस व्यक्ति, उस स्वप्न, उस गाथा का कोई चिह्न, जो एमेके थी।

पता नहीं, पता नहीं, पता नहीं।

• • •

मास्टर जी

जब मैं तीसरी जमात में गया, मेरे माता-पिता ने मुझे जर्मन सिखाने का निर्णय ले लिया। हालांकि स्कूल में जर्मन चौथी ज़मात से शुरू होती थी, हमारे घर का यही क़ायदा था। दूसरी ज़मात में मैंने लातिन सीखनी शुरू कर दी थी और ड्योढ़े दर्जे में फ्रेन्च, किन्तु उन दिनों मुझे अंग्रेज़ी सीखने का शौक खाए जा रहा था, इसलिए मैंने फ्रेन्च को दरकिनार करके अंग्रेज़ी की प्राइमर ख़रीद ली और घरवालों से छिपकर अंग्रेजी सीखने लगा।

किन्तु जर्मन सीखने के लिए मेरे पिता ने मुझे श्री काट्ज के हवाले कर दिया। श्री काट्ज 'यहूदी गली' के उस घर में रहते थे, जहाँ पहले यहूदी बच्चों का स्कूल था। वह यहूदी-धर्म के अध्यापक और सिनानोग (यहूदियों का प्रार्थना-गृह) के पादरी भी थे। उनका ठिगना क़द था और सिर के बाल उड़ गए थे, लेकिन गाने और वायलिन-हारमोनियम बजाने में उनका सानी नहीं था। एक घंटा पढ़ाने के लिए वह आठ क्राउन लेते थे। इतनी कम रक़म मेरे पिता ने कभी किसी दूसरे अध्यापक को नहीं दी थी।

पहले दिन उनके घर जाते हुए मुझे बहुत डर लग रहा था। यहूदियों के स्कूल की पहली मंज़िल में जहां पहले क्लास लगती थी, शीशे का एक पार्टीशन लगा था। यहीं दरवाजे पर रुककर मैंने घंटी बजायी। पार्टीशन के

एक तरफ़ प्रार्थना-गृह था और दूसरी तरफ़ पादरी का घर। मुझे काफ़ी डर लग रहा था, लेकिन श्री काट्ज का व्यवहार मेरे प्रति स्नेह और सहृदयता से भरा था। वह मुझे अपने साथ रसोईघर में ले गए जहाँ उनकी भारी-भरकम पत्नी पुराना गाऊन पहने चूल्हे के पास बैठी थी। मास्टर जी ने मुझे रसोई की मेज़ के सामने बैठा दिया और फिर मेरे सामने जर्मन की नयी प्राइमर खोलकर रख दी। किताब की पीठ थोड़ी-बहुत फट गयी थी और उसके पहले पन्ने पर किसी गोल और गन्दी चीज़ की काली-सफ़ेद तस्वीर दिखाई दे रही थी। तस्वीर अण्डे की थी। मास्टर जी ने स्नेहपूर्ण स्वर में मुझे बताया कि अण्डे को जर्मन में 'एइ' कहते हैं और इस तरह मेरी जर्मन भाषा की पढ़ाई शुरू हुई, बिलकुल शुरू से, यानी अण्डे से।

"दास इस्त एइन एई।" मास्टर जी ने कहा और मैंने वह वाक्य दुहरा दिया।

"क्या यह एक अण्डा है?" मास्टर जी ने पूछा।

और मैंने तुरन्त जवाब दिया, "हाँ, यह एक अण्डा है।" और फिर मैं बराबर उनके वाक्यों को दोहराता गया।

श्री काट्ज सिर्फ़ जर्मन ही नहीं पढ़ाते थे, बल्कि यहूदी-धर्म के बारे में बहुत-कुछ बताते-सिखाते थे। इसके लिए हिब्रू जानना आवश्यक था। यही कारण था कि यहूदी बच्चे अलग से उनके पास हिब्रू सीखने आते थे, किन्तु यहूदियों में यह एक प्रथा है कि जब कभी वे कोई ऐसा काम करते हैं, जिसका धर्म से कोई सम्बन्ध हो, प्रार्थना करना, या कोई ऐसा ही काम, तो वे हैट ज़रूर पहनते हैं।

जब मैं अपनी जर्मन के लिए समय से कुछ पहले आ जाता, जो देखता कि मास्टर जी के सामने योनाथ लेविथ और इत्ज़ीक खोन बैठे हैं और ऊँची आवाज़ में किसी अपरिचित भाषा में रहस्यपूर्ण वाक्य दोहरा रहे हैं। वह अपरिचित भाषा हिब्रू थी। अपने सिरों पर वे श्री काट्ज के हैट पहने रहते

थे। एक अपना रोज़मर्रा का हैट और दूसरा प्रार्थना का हैट, जो उनके कानों तक खिसक आता था। गर्मी के दिन थे। वे धर्म-पाठ के पीरियड के लिए अपने हैट नहीं लाते थे, अतः मास्टर जी को उन्हें अपने हैट देने पड़ते थे, जो उनके लिए काफी बड़े पड़ते थे। कुर्सियों पर बैठे हुए वे मुझे घमण्ड और हिक़ारत से देखा करते थे, मानो मुझे जतला रहे हों कि जिस भाषा में वे बोल रहे हैं, उसे मैं नहीं समझता। वे गला फाड़-फाड़कर कुछ चीखते थे, किन्तु मास्टर जी बीच-बीच में टोककर उनकी ग़लतियों को सुधारते जाते थे, जिससे पता चलता था कि उन्हें भी इस भाषा का ज्ञान कुछ अधिक नहीं है, किन्तु मैं तो बिल्कुल कोरा था, अतः कम-से-कम मुझ पर हँसने का उन्हें पूरा हक़ था।

बाद में, जब श्री काट्ज की पुत्री रुथ का विवाह हुआ, उन हैटों को लेकर एक अजीब घटना हुई थी। रुथ का विवाह श्री इसीडोर काफ़्का नाम के एक सज्जन से हुआ था। 'ओ' नगर में उनका कॉपियों का छोटा-सा कारख़ाना था और वह ऑर्थोडोक्स यहूदी थे। विवाह भी ऑर्थोडोक्स ढंग से हुआ था। कोलीन शहर से प्रसिद्ध रब्बी को उसके लिए विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। श्री काट्ज का बहुत से लोगों से अच्छा-खासा मेल-जोल था......सब उनके बारे में यही कहते थे कि वह अच्छे यहूदी हैं......कुछ वैसे ही जैसे मोशेम चुबकालोब के बारे में कहा जाता था कि वह बुरे यहूदी हैं। यही कारण था कि श्री काट्ज की पुत्री के विवाह में न केवल यहूदी आए थे, बल्कि शहर के अनेक ईसाई भी, लेकिन वे गर्मियों के दिन थे और चूंकि वे बिना हैट पहने आए थे, अतः उन्हें सिनानोग में घुसने की इज़ाज़त नहीं मिली। लोगों को यह बात बहुत बुरी लगी, क्योंकि सभी भीतर जाकर शादी देखना चाहते थे, लेकिन नंगे सिर भीतर जाना मना था। फलस्वरूप वे बाहर खड़े-खड़े गाली-गलौच करने लगे।

कुछ देर बाद सहसा वहाँ श्री इसाक आइसनर भागते-भागते आ पहुँचे। उनकी पीठ पर दो बड़े-बड़े थैले लटक रहे थे, जिनमें ठसाठस टोपियाँ भरी

थीं। ऐसी टोपियाँ, जिनका फ़ैशन मुद्दत पहले उड़ चुका था और जो ख़रीदारों के अभाव में अर्से से उनकी दूकान में सड़ रही थीं। श्री आइसनर उन हरी-पीली धर्मोत्सव टाइप टोपियों को एक-एक क्राउन में लोगों को उधार देने लगे। कोई टोपी उड़ा न ले जाए, इसलिए दस क्राउन पहले से ही वह डिपॉज़िट के रूप में धरवा लेते थे। कुछ ही देर में सारी टोपियाँ बँट गयीं, क्योंकि विवाह की रस्म शुरू हो गयी थी और लोग भीतर जाने के उतावले हो रहे थे। इतना समय उनके पास नहीं था कि अपने नाप की टोपी चुन सकें। जल्दी-जल्दी डिपॉज़िट की रक़म देकर जिसके हाथ जो टोपी लगी, उसे पहनकर हर आदमी सिनानोग के भीतर दौड़ने लगा। फलस्वरूप किसी के सिर पर ज़रूरत से बड़ी टोपी थी और किसी के सिर पर ज़रूरत से छोटी। मेरे पिता हट्टे-कट्टे ऊँचे क़द के आदमी थे और उसी के अनुपात में उनका सिर भी काफ़ी बड़ा था। दुर्भाग्यवश उनके सिर पर काफ़ी छोटी, सिलेटी रंग की जोकर-नुमा टोपी टिकी थी, जिसे उन्हें बार-बार हाथ से संभालना पड़ता था। उनकी इस दुर्दशा को देखकर मेरी हँसी नहीं रुक सकी। पिता ने मुझे एक थप्पड़ रसीद किया और सिनानोग से बाहर निकाल दिया।

मेरे अध्यापक श्री काट्ज हमेशा रसोईघर में मुझे पढ़ाया करते थे। उनकी पत्नी चूल्हे के पास बैठकर चुपचाप हमारी पढ़ाई-लिखाई को देखा करती थी। पहले साल उन्होंने कभी मुंह से एक शब्द नहीं निकाला, किन्तु बाद में उनकी ख़ामोशी धीरे-धीरे ख़त्म हो चली थी। मैं धीरे-धीरे जर्मन बोलने-समझने लगा था। अब हम सिर्फ़ परियों की कहानियाँ और ऐसी ही दिलचस्प किताबें पढ़ा करते थे। मैं जो कुछ पढ़ता था, उसका सारांश मास्टर जी को सुनाया करता था।

बाद में जर्मनों के आने के बाद भी मैं बराबर एक साल तक श्री काट्ज के पास आता रहा था। उन दिनों पढ़ाई के बहाने हम ज़्यादातर राजनीतिक-स्थिति के बारे में ही बातचीत किया करते थे। श्रीमती काट्ज अक्सर अपने पति से सहमति जतलाने के लिए हमारी बातचीत में दख़ल

दिया करती थीं, लेकिन पढ़ाई के पहले वर्ष वह बिल्कुल ख़ामोश रहती थीं।

मेरे अध्यापक श्री काट्ज अपने ख़ास निजी ढंग से पढ़ाया करते थे, धीरे-धीरे कायदेवार। मैं बोलता जाता था, अच्छी पुरानी शराब, अच्छी पुरानी शराब का, के, की, अच्छी, पुरानी शराब को, के लिए इत्यादि और बीच-बीच में श्री काट्ज अपना सिर हिला दिया करते थे। इन वाक्यों को दोहराते हुए मेरे मन में पुरानी बढ़िया शराब पीने की तलब उमड़ आया करती थी, जिसे श्री काट्ज कारक-पदों में तो इस्तेमाल किया करते थे, लेकिन शायद ख़ुद कभी नहीं। सम्भव है, वह शराब पीते हों, लेकिन ज्यादा नहीं, वह काफ़ी ग़रीब थे।

बाद में जब मुझे अच्छी-खासी जर्मन बोलनी आ गयी, वह हमेशा मुझसे कहा करते थे, "दास वासदू कान्स्ट, डेनियल, दास काहन डीर नियेमान्ड नेहमेन। डाहम लर्न, लर्न ड्योच (यह अनमोल ज्ञान है, डेनियल, कोई इसको तुमसे नहीं छीन सकता.....इसलिए जर्मन सीख लो)।"

फिर कभी-कभी वह मुझे प्रथम महायुद्ध के ज़माने में अपनी ग़रीब-हालत के क़िस्से सुनाया करते थे। वे अकाल के दिन थे और लोग पैसे देकर भी कोई चीज़ नहीं ख़रीद पाते थे। श्रीकाट्ज उस संकटकाल में भी किसानों को जर्मन पढ़ाकर अपना गुज़ारा कर लेते थे।

"और बदले में वे लोग मुझे खाने-पीने का सामान दे दिया करते थे।" मास्टर जी जर्मन में मुझसे कहते, "आटा, मक्खन और कभी-कभी गोश्त भी।" वह हर शब्द पर ज़ोर डाल कर धीरे-धीरे बोलते जाते और मुंह से उन शब्दों को सुनकर मेरे भीतर मक्खन, आटा और गोश्त खाने की लालसा भड़क उठती, हालाँकि सिर्फ़ मिठाइयों के अलावा मैं दूसरी चीज़ें बहुत कम खाता था।

श्री काट्ज जर्मन में मुझसे कहते, "डेनियल तुम्हें सब कुछ मिल सकता है, रुपया-पैसा, सब-कुछ......सिर्फ़ यहाँ कुछ होना चाहिए।" और वह

अँगुली से अपने गंजे सिर की ओर इशारा करते....."जो यहाँ है, उसे कोई तुमसे नहीं छीन सकता।" वह कहा करते थे, "अगर नई लड़ाई छिड़ गई तो हमें ज़्यादा तकलीफ़ नहीं उठानी पड़ेगी। लोग हमेशा जर्मन सीखना चाहेंगे और हम उनसे कहेंगे कि ट्यूशन की फ़ीस पैसों में न देकर वे हमें आटा, मक्खन और गोश्त दे सकते हैं.....और दूध भी।" एकाएक उन्हें याद आता और वे तुष्ट भाव से मुस्कराने लगते।

शुक्रवार की शाम को अक्सर मास्टर जी जल्दी छोड़ देते थे और घण्टा खत्म होने से पहले ही मुझे घर जाने की इज़ाज़त मिल जाती थी। वह उनकी प्रार्थना का दिन होता था। मंगलवार के दिन कुछ अधिक समय पढ़ा कर वह शुक्रवार की क्षतिपूर्ति कर लेते थे।

किन्तु प्रार्थना के दिन घर जाने के बजाय मैं सीढ़ियों के अंधेरे कोटर में छिपकर उन्हें देखा करता था। शीशे के पार्टीशन के पीछे से प्रार्थना-गृह की ओर जाते हुए मुझे यहूदियों के चेहरे दिखायी दे जाते थे। शहर के जाने-पहचाने चेहरे, योनाथ लेविथ के पिता अब्राहम लेविथ, डॉक्टर स्ट्रॉस, श्री ओहरेन्जुग, जिनकी कपड़ों की बड़ी दूकान थी, उनका लड़का बेन्नो ओहरेन्जुग और कई दूसरे लोग, जिन्हें मैं नहीं जानता था।

कुछ देर बाद प्रार्थना-गृह से गाने की आवाज़ सुनायी देती थी, मास्टर जी श्री काट्ज की आवाज़ और फिर मिली-जुली आवाज़ों का एक बवंडर-सा ऊपर उठता था और मुझे यह असम्भव-सा लगता था कि ये सब आवाजें श्री लेविथ, श्री ओहरेन्जुग या डॉ० स्ट्रॉस जैसे भद्र लोगों की हो सकती हैं। आवाज़ें धीरे-धीरे ऊपर उठती जातीं और उनके बीच सहसा श्री काट्ज का स्वर बहुत शक्तिशाली, अवसादपूर्ण और सुन्दर हो जाता। मैं सुनता रहता और मेरे भीतर एक अज़ीब, अजानी, भयानक-सी आकांक्षा उमड़ने लगती।

लड़खड़ाते कदमों से मैं सीढ़ियों के अँधेरे कोटर से बाहर निकलकर स्कूल के सामने आ जाता। पहाड़ी पर क़िले की बुर्जियों पर स्याह-नीला

आकाश फैला होता और वहीं एक धुला-धुला-सा सान्ध्य-तारा आँसू-सा टिमकता हुआ दिखाई दे जाता। शाम के झुटपुटे में घर जाते हुए अक्सर मुझे गिरजों से आती हुई ऑर्गन की संगीत-ध्वनि सुनायी दे जाती और तब मेरे भीतर एक पागल कर देने वाली उदासी घुमड़ने लगती और मुझे लगता जैसे मेरे आँसू सहसा फूट पड़ेंगे।

मैं अक्सर सोचा करता कि ये यहूदी लोग इतने विलापपूर्ण स्वर में किसे बार-बार बुलाते हैं, क्यों इतना रोते-चीखते हैं?

एक बार जब मैं पढ़ने के लिए श्री काट्ज के घर आया, प्रार्थना-गृह के दरवाज़े आधे खुले थे। डरते-डरते मैं भीतर चला आया। कमरे में एक लम्बा पर्दा लटक रहा था, जिस पर क़सीदे का काम किया गया था। खिड़कियों के बीच पैलस्टाइन का एक मानचित्र लगा था, जिसका शीर्षक हिब्रू में लिखा था।

मुझे अब सिर्फ़ उस मानचित्र की याद रह गयी है, क्योंकि कुछ देर बाद ही बूढ़ा अर्नो क्राउस वहाँ आ टपका। वह प्रार्थना-गृह की सफ़ाई-धुलाई किया करता था। उसने मुझे वहाँ से फौरन बाहर जाने का आदेश दे दिया। सम्भव है, वे पैलस्टाइन को दोबारा पाने के लिए ही रोते-चिल्लाते होंगे, जहाँ मुद्दत पहले उनके पूर्वज रहा करते थे। वह स्कूली मानचित्र काफ़ी अजीब था और उसके पास लटकते हुए उस ख़ूबसूरत क़सीदेदार पर्दे को देखकर मुझे एक दूसरे पर्दे की याद हो आयी थी, जो कभी बहुत पहले जेरूसलम में फट गया था।

जब श्री काट्ज की पुत्री रुथ का विवाह हुआ, उस समय अनेक क़िस्म की रस्में और अनुष्ठान सम्पन्न किए गए थे। श्री काट्ज उन दिनों अक्सर मुझे यहूदियों के धर्म-विश्वास और रीति-रिवाजों के बारे में बताया करते थे। एक बार उन्होंने मुझे दरवाज़े के फ्रेम में जड़े एक बिगुल को दिखाया था, जिस पर वैसा ही कत्थई रंग लेपा गया था, जो दरवाज़े का रंग था। उन्होंने मुझे बताया कि इस बिगुल के भीतर एक मोमबत्ती रखी है, जिस पर कुछ

धार्मिक मंत्र खुदे हैं। उन्होंने मुझे उन मंत्रों का महत्त्व भी समझाया था, जो आज मैं भूल गया हूं।

एक बार मैंने देखा कि कई दिनों से उन्होंने दाढ़ी नहीं बनायी। बाद में उन्होंने बताया कि ये उनके व्रत के दिन हैं और इन दिनों वह हज़ामत नहीं बना सकते। एक दूसरे मौक़े पर उन्होंने क़लम या पेंसिल इस्तेमाल करना बन्द कर दिया, क्योंकि उन दिनों हाथ से काम करने पर मनाही थी। उन्होंने मुझे यह भी बताया था कि यहूदियों का सिर्फ एक क़ानून है और वह है 'पुराना क़ानून।'

मैं उस अवसर पर उनके सामने सहसा बहुत धार्मिक बन गया और मैंने बहस करते हुए कहा कि हम कैथोलिक-धर्म के लोग एक 'नए कानून' को भी मानते हैं।

मास्टर जी ने कहा कि वह इसके बारे में जानते हैं, लेकिन वह यीशु को 'मुक्तिदाता' के रूप में स्वीकार नहीं करते।

और मैंने कहा कि हम कैथोलिक उन्हें 'मुक्तिदाता' के रूप में स्वीकार करते हैं।

और तब हमारे बीच काफ़ी बड़ी बहस छिड़ गयी और बाद में मुझे यह सोचकर काफ़ी सन्तोष हुआ कि दुनिया में नाना प्रकार की कितनी दिलचस्प चीजें हैं और हर चीज़ एक-दूसरे से भिन्न हैं।

तीज-त्योहार के मौक़ों पर मास्टर साहब अक्सर मुझे यहूदियों की विशेष 'डबल-रोटी' भेंट में दिया करते थे, जो पार्सल द्वारा किसी कारख़ाने से उनके पास आती थी। इस रोटी को प्रायः मेरे पिता खाया करते थे, क्योंकि खाने के मामले में वह कभी कोई परहेज-पर्दा नहीं करते थे। मास्टर जी कहा करते थे कि यहूदियों की यह रोटी पेट के रोगियों के लिए बहुत लाभदायक है, क्योंकि उसे सिर्फ़ आटे और पानी से बनाया जाता है।

विवाह से एक दिन पहले रुथ को कुछ औरतों के साथ एक अलग

कमरे में बन्द कर दिया गया था। वहाँ दुल्हन के हर अंग को अच्छी तरह से धोया गया, उसे नहलाया गया और शायद उसकी देह पर सुगंधित तेल की मालिश भी की गयी......लेकिन इसके बारे में मैं निश्चित नहीं हूं। सम्भव है, तेल-मालिश की प्रथा कैथोलिक-धर्म में है और मैं उसे यहाँ ग़लती से याद कर बैठा हूं। ख़ैर, जो भी हो, मेरे इस ख़याल से ही मैं बहुत अजीब ढंग से उत्तेजित हो गया था कि कैसे नंगी, सफ़ेद रुथ नहाने के टब से बाहर निकली होगी और कैसे यहूदी स्त्रियों ने उसकी देह को सुगंधित तेल से मला-मसला होगा। आज भी उसका यह चित्र मुझे एक गोपनीय, सुन्दर और बहुत ही पवित्र ढंग से उत्तेजित कर देता है।

रुथ सचमुच कुंवारी लड़की थी और उसके होनेवाले पति इसीडोर काफ़्का भी निश्चित-रूप से कुँवारे थे। हालांकि देखने में काफ़ी ख़राब थे, खाते-पीते आदमी थे, किन्तु बहुत ज्यादा धनी नहीं थे और ऑर्थोडोक्स यहूदी थे।

अपनी ख़ास 'यहूदी रोटी' के बारे में मास्टर श्री काट्ज बहुत रस लेकर बोला करते थे। उन्हें डायबिटीज़ की बीमारी थी। घरेलू मिठाइयाँ, पेस्टरी तथा वे सब चीज़ें खाने की उन्हें मनाही थी, जो डायबिटीज़ के मरीज़ नहीं खाते। मुझे उनकी यह बीमारी काफ़ी दिलचस्प और आकर्षक जान पड़ती थी और कभी-कभी उन पर ईर्ष्या भी होती थी कि वह सब कुछ नहीं खा सकते, जबकि मैं सब कुछ खा सकता हूं, किन्तु सिवाय मिठाइयों के मुझे कोई चीज़ अच्छी नहीं लगती थी।

इस बीच एक बार मैं बीमार पड़ गया और मुझे अजीब तरह का पेशाब आने लगा। डॉ० स्ट्रॉस ने कहा कि मेरा गुर्दा ख़राब है और मेरे लिए पथ्य निर्दिष्ट कर दिया, किन्तु यह पथ्य श्री काट्ज के पथ्य से बिलकुल उलटा था।

"क्या?" श्री काट्ज ने आतंकित स्वर में मुझसे पूछा, "क्या तुम्हें गोश्त खाने की मनाही है, डेनियल? अच्छा, चरबी भी नहीं खा सकते?" मुझे लगा

सहसा वह बहुत ग़मगीन-से हो गए हैं और किसी चीज़ के बारे में कुछ सोचने लगे हैं।

मुझे इस बात पर बहुत गर्व था कि मैं भी मरीज हूं और मेरा भी एक ख़ास पथ्य है। मैंने सोचा था कि इसके बारे में मैं मास्टर जी से डींग मारूंगा, किन्तु श्री काट्ज का चेहरा बहुत पीला पड़ गया था।

अचानक उन्होंने कांपते स्वर में मुझसे कहा, "डेनियल, अगर किसी आदमी को डायबिटीज़ हो और साथ में गुर्दे की बीमारी भी, तो वह बेचारा क्या खाएगा। वह तो सचमुच भूख से मर जाएगा।

शादी के नौ महीने बाद मास्टर जी की लड़की ने एक छोटी-सी बच्ची को जन्म दिया। बच्ची का नाम था हाना। मास्टर जी खुशी से फूले नहीं समाते थे और बराबर बच्ची के बारे में बातें किया करते थे। कहा करते थे कि बच्ची सचमुच बहुत खूबसूरत है और उसके बाल अप्सराओं की तरह हैं.....वाइ आइन एंगलखेन (एंजिल की तरह)।

एक बार वह विशेष रूप से प्रसन्न दिखाई दे रहे थे। मुझसे बोले कि वह अभी-अभी अपनी लड़की की ससुराल से लौटकर आ रहे हैं। उन्होंने अपनी मेज़ की दराज़ से एक मोटी-सी किताब निकाली, जिसकी जिल्द उलटी बँधी थी.....यही कारण था कि उसका आरम्भ अन्त में था। मुझे किताब दिखाते हुए बोले, "यह मैंने हाना के लिए सम्भालकर रखी है.....एक दिन उसे इसकी ज़रूरत पड़ेगी।" वह बच्चों को हिब्रू हिज्जे सिखाने की प्राइमर थी, जिसे पढ़कर वह भाषा सीखी जा सकती थी, जिसमें यहूदियों की बाइबिल लिखी थी। मुझे लगता है, वे उसे बाइबिल नहीं कहते। उस प्राइमर में अण्डों, बिल्लियों, कुत्तों और पुराने फैशन के कपड़े पहने हुए लड़कों की तस्वीरें थीं, बिल्कुल हमारी चेक भाषा की प्राइमर की तरह।

मैंने किताब की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए जर्मन में कहा, "हाना, दास इस्त आइन शोनर नामे!" कितना खूबसूरत नाम है, हाना!)।

मास्टर जी मेरे इस वाक्य को सुनकर और भी अधिक प्रसन्न हो गये।

बाद में हमारे शहर पर हिटलर का अधिकार हो गया और यहूदियों के ख़िलाफ़ क़ानून जारी हो गए। मैं उन दिनों भी बेनागा श्री काट्ज के घर जाता था, हालाँकि अब मुझे इसकी ज़रूरत नहीं थी, क्योंकि मैं जर्मन अच्छी तरह पढ़ना-लिखना सीख गया था। हमने परी-कथाएँ और कहानियों की किताबें पढ़ना बन्द कर दिया था और अब हम राजनीति.....सिर्फ़ राजनीति के बारे में बातचीत किया करते थे। मैं जी भरकर हिटलर और जर्मनों को गालियाँ दिया करता था और मास्टर जी शिकायत-भरे लहज़े में बड़बड़ाते रहते थे। चूल्हे के पास बैठी हुई मास्टरनी जी भी शोक-भरे स्वर में कुछ-न-कुछ कहती रहतीं और मैं गुस्से में आकर हिटलर को कोसने लगता, हालांकि उन दिनों मुझे ठीक-ठीक कुछ भी मालूम नहीं था कि हिटलर नाम का आदमी असल में चाहता क्या है।

"आह....हम यहूदियों को क्या-कुछ नहीं सहना पड़ा है!" मास्टर जी कहते और मुझे लगता कि वह यह बात मुझसे नहीं, छत के ऊपर आकाश में किसी से कह रहे हों।

जब मैं घर लौटता, रास्ते में धार्मिक-जुलूसों के आगे ब्लैक-बोर्ड पर मुझे उन यहूदियों के नाम दिखाई दे जाते, जो अपना धर्म छोड़ रहे हैं।

बाद में किसी अनाम व्यक्ति ने स्थानीय अख़बार 'आर्यों का संघर्ष' में एक लेख प्रकाशित किया, जिसमें लिखा था कि 'के' शहर में अमुक बैंक के डायरेक्टर अपने लड़के को जर्मन सिखाने के लिए यहूदियों के सिनानोग के पादरी अडोल्फ काट्ज के पास भेजते हैं। मेरे पिता इस लेख को पढ़कर ग़ुस्से में भड़क उठे, लेकिन फिर बेबस होकर बैठ गए और उस दिन से मैंने श्री काट्ज के घर जाना छोड़ दिया। उस दिन से पिता जी की भी 'गिरावट' शुरू हो गयी। लोगों में यह ख़बर घर कर गयी कि वह यहूदियों को चाहते हैं। मेरे पिता गुस्से में भुनभुनाते रहते, लोगों को गालियां देते। एक बार

अचानक आधी रात को किसी ने हमारे घर का दरवाजा खटखटाया और वे मेरे पिता को जबरदस्ती बाहर ले गए. . . उन्हें इतना समय भी नहीं मिल सका कि अच्छी तरह अपने कपड़े बदल सकें। उसके बाद मैं उन्हें हमेशा खाकी पतलून पहने देखता. . . हमेशा खीजे और झुंझलाए से घर में घूमते रहते और कभी-कभी मुझे यूँ ही खामख़्वाह चांटा लगा देते अथवा धारीदार कमीज़ और शिकारियों का हैट पहनकर दादा जी के साथ बाहर निकल पड़ते। ईश्वर ही जानता है कि उन दिनों भी वह लोगों को गालियाँ देते थे या नहीं. . . शायद देते हों, यह उनका स्वभाव था, लेकिन हमने उसके बारे में इसके बाद कुछ और नहीं सुना।

अख़बार में उस खेल को प्रकाशित हुए लगभग तीन सप्ताह गुज़र चुके थे। एक दिन बिल्कुल अप्रत्याशित रूप से मुझे मास्टर जी श्री काट्ज घर की तरफ़ आते हुए दिखायी दिए। उन्होंने काला ओवरकोट पहन रखा था, जिसके कॉलर तेल और धूल से काफी गन्दे और पुराने पड़ गये थे। उन्होंने घंटी बजायी, हॉल-कमरे में कुछ देर ठिठके, फिर भीतर चले आये। भीतर कमरे में वह ओवरकोट पहने ही कुर्सी पर बैठ गए और बड़े विनीत और शान्त-भाव से मुस्कराने लगे,। "क्या बात है, डेनियल?" उन्होंने जर्मन में मुझसे पूछा, "इतने दिन से तुम दिखाई नहीं दिए। मैंने सोचा, शायद तुम बीमार पड़ गए हो।"

"मेरा चेहरा लाल हो गया।"

"मास्टर जी," मैंने कहा, "अब मैं आपके पास नहीं आ सकूंगा।"

"नहीं आ सकोगे?" उन्होंने तनिक आश्चर्य से मेरी ओर देखा, "लेकिन क्यों?"

"मैं. . ." इससे पहले मैं कुछ कहता, मेरे पिता कमरे में चले आए। उनका चेहरा लज्जारक्त हो आया था। उन्होंने मुझे बाहर भेज दिया और स्वयं मास्टर जी के पास आकर बैठ गए। वह देर तक कमरे में मास्टर जी

के साथ बातचीत करते रहे। फिर कमरे के बाहर मास्टर जी दिखाई दिए और उनके पीछे-पीछे पिता जी। मास्टर जी का गंजा सिर नीचे झुका था और चेहरे पर लम्बी, कोमल, यहूदी नाक बाहर की तरफ निकल आई थी।

मुझे देखकर उन्होंने मुझसे हाथ मिलाया और हमेशा की तरह जर्मन में कहा, "ऑल्सो, आउफ़ वाइडर सेहन, डेनियल!"[1]

और मैंने उत्तर में कहा, "आउफ़, वाइडर सेहन, हर लेहरर !"[2]

जब हमारे घर का दरवाज़ा मास्टर जी और उनके काले ओवरकोट के पीछे बन्द हो गया, तो मै अपने कमरे में आकर रोने लगा। पिता जी का चेहरा भी आंसुओं से भीगा था, किन्तु कुछ ही देर में उनकी पुरानी झुंझलाहट वापस लौट आई और वह मेरी छोटी बहन हान्का को डांटने लगे कि वह पियानो पर प्रैक्टिस क्यों नहीं कर रही?

उसके बाद मैंने श्री काट्ज को लम्बे अर्से तक नहीं देखा। इस बीच यहूदियों को 'सितारा' लगाने का हुक्म मिल चुका था।[3] एक दिन शहर के चौराहे पर मेरी मुलाकात श्री ब्लादीक से हुई थी। वह हमारे बैंक के मैनेजर थे और जब पिता जी को कान्सनट्रेशन कैम्प में बन्द कर दिया गया, तो वह उनकी जगह पर बैंक के डायरेक्टर बन गए थे। चौराहे पर रुककर वह मुझसे कुछ पूछ रहे थे। दूसरी तरफ नुक्कड़ पर अखबारों की दुकान थी..... सहसा मुझे दुकान से मास्टर जी श्री कॉट्ज बाहर निकलते दिखाई दिए। उनके हाथ में एक पिक्चर-पोस्टकार्ड था और काले ओवरकोट पर पीला 'सितारा' टंगा था। मुझे देखकर उनके चेहरे पर सहृदय-मुस्कान खिल गई। खुशी की झोंक में शायद वह अपने सितारे वगैरह को भूल गए। मेरे पास

1. अच्छा, डेनियल, गुड बाई!
2. गुड बाई, मास्टर साहब!
3. फ़ासिस्ट क़ानून के अनुसार हर यहूदी को अपने कोट पर सितारानुमा बिल्ला लगाने की आज्ञा मिली थी, ताकि उसे दूसरों से अलग करके पहचाना जा सके।

आकर प्रसन्नता से बोले, "गुड मार्निंग, डेनियल! बहुत दिनों से दिखाई नहीं दिए। कहां रहे?"

मैंने किंचित् असमंजस में उनके अभिवादन का उत्तर दिया। मुझे भी उन्हें देखकर बहुत खुशी हुई थी. . . वह वैसे ही थे, जैसा मैं उन्हें देखता आया था।

"गुड मार्निंग, मास्टर साहब! आप कैसे हैं?" मैंने कहा।

सहसा मैंने अपने पीछे हल्की-सी सरसराहट सुनी। पीछे मुड़कर देखा. . . श्री ब्लादीद हमसे हटकर लम्बे-लम्बे डग मारते हुए चौराहे को पार कर रहे थे और उनकी बरसाती हवा में उड़ती हुई सरसरा उठती थी। अचानक मेरा दिल गुस्से से भड़क उठा। मैं मास्टर जी की तरफ मुड़ा और मैंने उनसे कहा कि मैं उन्हें घर तक पहुंचा आता हूं।

सब लोगों के सामने खुले चौराहे पर मैं मास्टर जी के साथ चलने लगा। मास्टर जी भी अपने आस-पास की स्थिति को भूल गए और हम मजे से हिटलर, लड़ाई, डायबिटीज़ और उनकी पोती हाना के बारे में बातें करते हुए चलने लगे। उन्होंने मुझे बताया कि हाना अब तीन बरस की हो गई है और अच्छी तरह बोल लेती है।

बहुत से लोगों ने हमें एक-दूसरे के साथ देखा था। सम्भव है, पिता जी को इसके लिए कहीं अतिरिक्त कष्ट भोगना पड़ा, किन्तु इसकी मुझे उस दिन परवाह नहीं थी, क्योंकि मास्टर मुझे अच्छे लगते थे।

बाद में बहुत-सी दवाइयों पर रोक लगा दी गई और नए कानून के मुताबिक उन दवाइयों को यहूदियों को नहीं बेचा जा सकता था। इन्सुलिन भी उनमें शामिल थी। उस दिन मैं किसी काम से केमिस्ट की दुकान में था और वहां अपने मित्र ब्लादा नोसाल से बातचीत कर रहा था। उसी समय श्री काट्ज इन्सुलिन खरीदने दुकान में आ पहुंचे। वह अभी तक इस तथ्य से अनभिज्ञ थे कि इन्सुलिन उन दवाइयों में से है, जिसे यहूदियों को नहीं बेचा

जा सकता। मैं लबोरेटरी में अपने मित्र के साथ खड़ा था और बोतलों-शीशियों के बीच उनके काले ओवरकोट को देख रहा था।

मेरी नजर काउन्टर के पीछे खड़े केमिस्ट श्री हैंस पर भी आ पड़ी। उन्होंने झिझकते हुए मास्टर जी पर आंखें उठायीं, धीरे-से खाँसे और फिर पूछा, "इन्सुलिन?"

"हां. . . उतनी ही, जितनी पहले दी थी।" मास्टर जी ने कहा।

केमिस्ट मास्टर जी से कुछ कहना चाहता था, किन्तु असल में उसने जो कुछ कहा, वह कुछ अलग था। उसने मास्टर जी से कहा कि इस हफ्ते दवाइयों का पार्सल नहीं आया।

"अच्छा. . .कब आएगा?" मास्टर जी ने तनिक आतंकपूर्ण स्वर में पूछा।

केमिस्ट का चेहरा लज्जारक्त हो उठा, कुछ उसी तरह जैसे मास्टर जी से अन्तिम मुलाकात के वक्त मेरे पिता का चेहरा लाल हो उठा था।

"जरा ठहरिए" केमिस्ट ने काउन्टर के नीचे से एक पैकेट बाहर निकाला, "यह अस्पताल के लिए था, लेकिन इसे आप ले जा सकते हैं। जब पार्सल आएगा तो आपका हिस्सा मैं इसके बदले रख छोड़ूंगा।"

श्री काट्ज ने धन्यवाद दिया और पैकेट उठाकर बाहर चले गए।

केमिस्ट हैस हमारे पास लैब में आए। उनका चेहरा अब भी लाल था। उन्होंने ब्लादा से कहा कि वह अमुक स्त्री के नाम पर इन्सुलिन का कार्ड तैयार कर दे, ताकि श्री काट्ज को नियमित रूप से इन्सुलिन दी जा सके, "लेकिन जरा होशियारी से. . . दुकान में लोगों के सामने नहीं।"

फिर एक दिन यह आर्डर आया कि शहर के सब यहूदियों को रेलगाड़ी में भरकर कहीं बाहर भेजा जाएगा।[1] उन्हें सुबह जाना था। मैं उस दिन

---

1. कान्सनट्रेशन कैम्प...जहां लगभग सब बूढ़े, जवान यहूदियों को 'गैस-चैम्बर' में खत्म कर दिया जाता था—अनुवादक

तड़के ही उठ बैठा और स्टेशन की ओर चल पड़ा। रात भर मैं मास्टर जी के बारे में ही सोचता रहा।

वह पतझड़ का गमगीन, मैला-सा दिन था। हवा में कड़कती सर्दी थी। स्टेशन के सामने यहूदियों की लम्बी कतार लगी थी। हाथों में सन्दूक और बण्डल लटकाए वह चुपचाप खड़े थे।

मैं 'स्टार' होटल के पीछे छिपकर खड़ा हो गया, ताकि वे मुझे न देख सकें। एक जर्मन सिपाही वहाँ खड़ा था। उस लम्बी कतार में मेरी आंखें श्री काट्ज को ढूंढ रही थीं। बहुत से जाने-पहचाने चेहरे मुझे वहां दिखाई दे रहे थे. . . डॉ० स्ट्रांस, सारा एबल्स, जो गोद में अपने बच्चों को लिए खड़ी थी, लिओ फेल्ड, श्री लेविथ इत्यादि।

अचानक मुझे काले ओवरकोट में मास्टर श्री काट्ज दिखायी दिए। उनके पास भारी-भरकम मास्टरनी जी के बदसूरत दामाद श्री इसीडोर काफ़्का खड़े थे। उनका हाथ एक पीले चेहरे वाली छोटी-सी बच्ची ने पकड़ रखा था, जिसकी टांगों पर मैली जुराबें चढ़ी थीं। वह हाना थी। मैंने उसे उस दिन पहली बार देखा था।

कुछ देर बाद उस जर्मन सिपाही ने अपनी ऊंची, चीखती आवाज में कुछ कहा। कतार हिलने लगी। मास्टर जी ने जमीन से रस्सी में बंधी पोटली उठाई और दूसरों के साथ धीरे-धीरे स्टेशन की तरफ़ चलने लगे।

●●●

विश्व कथा-साहित्य

की नयी दो पुस्तकें

7 रिक्शावाला   8 एमेके



लाओ श

चीन के महान् उपन्यासकार लाओ श का सर्वाधिक प्रसिद्ध और लोकप्रिय उपन्यास है 'रिक्शावाला'।

इसमें 'रिक्शावाला' छोटी आयु में ही हाथ रिक्शा खींचने और सवारियों को ढोने पर विवश है। वह चाहता भी है कि पैसे एकत्र करे और खुद अपना एक रिक्शा ख़रीद ले बार-बार उस पर विपत्तियां आती हैं और वह अपने रिक्शे से वंचित रह जाता है। एक बार रिक्शा पा भी लेता है, पर फौजी पलटन की तानाशाही के कारण सब कुछ छिन जाता है। उसके सपने, उसके संबंध, उसकी दुनिया, कुछ भी उसका चाहा हुआ, उसे नहीं मिलता, फिर भी ना वह हारता है। 60/-



जोसेफ श्कवोरेस्की

'एमेके' चेक रिपब्लिक के सर्वाधिक विवादास्पद लेखक जोसेफ़ श्कवोरेस्की का विश्व चर्चित उपन्यास है।

'एमेके' वास्तव में एक जिप्सी युवती की गाथा है। जिसमें क्लासिक स्पर्श भी होता है और महान् होने का गुण भी। इसमें मास्टर की, सम्पादक की एमेके के साथ अद्भुत वार्ताएं हैं, जो अध्यात्म और यथार्थ की सटीक व्याख्याएं करती हैं। यूं कहें कि 'एमेके' इस उपन्यास का एक ऐसा केन्द्र-बिन्दु है, जो गाथा बन जाता है, इसीलिए जीवन का सबसे बड़ा और मार्मिक सत्य भी। 'एमेके' का विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। 40/-

महान् लेखकों का कथा संसार

प्रेमचन्द
अमृतराय के निर्देशन में सम्पादित प्रामाणिक मूल पाठ

प्रतिज्ञा	22/-
गबन	28/-
गोदान	28/-
वरदान	20/-
निर्मला	20/-
कर्मभूमि	28/-
सेवासदन	25/-
पूस की रात	25/-
नमक का दरोगा	25/-
नरक का मार्ग	25/-
सोहाग का शव	25/-
मंत्र	25/-
सद्गति	25/-
मंदिर और मस्जिद	25/-
दो भाई	25/-
दुनिया का सबसे अनमोल रतन	25/-
शतरंज के खिलाड़ी	25/-
बूढ़ी काकी	25/-
बड़े बाबू	25/-
रानी सारंधा	25/-
प्रेमचन्द की श्रेष्ठ कहानियां	20/-
कफ़न	20/-

अमृता प्रीतम

पिंजर	35/-
पांच बरस लम्बी सड़क	35/-

रवीन्द्रनाथ ठाकुर
विश्व भारती के तत्त्वावधान में सम्पादित प्रामाणिक मूल पाठ

क्षुधित पाषाण	16/-

बंकिमचन्द्र

आनंदमठ	20/-
कृष्णकांत का वसीयतनामा	16/-
विषवृक्ष	16/-

ताराशंकर वंद्योपाध्याय

बेगम	21/-
दो आंखें	16/-
दुनिया एक बाज़ार	20/-
गुलबदन	18/-

विमल मित्र

राग भैरव	18/-

शरत् चन्द्र

देवदास	20/-
शरत्चन्द्र की श्रेष्ठ कहानियां	20/-
चरित्रहीन	25/-

आचार्य चतुरसेन

ईदो	20/-
आभा	20/-
सोमनाथ	28/-
वयं रक्षामः	28/-
गोली	35/-
वैशाली की नगर-वधू	22/-

कृश्न चन्दर

फुटपाथ के फ़रिश्ते	16/-
जब खेत जागे	16/-
एक गधे की आत्म–कथा	18/-
सितारों से आगे	18/-

शिवानी

का कथा-संसार



मणिमाला की हंसी	38/-
मेरा भाई	20/-
चिरस्वयंवरा	20/-
विवर्त्त	20/-
कृष्णवेणी	22/-
कस्तूरी मृग	20/-
अपराधिनी	20/-
माणिक	20/-
मायापुरी	22/-
करिए छिमा	20/-
कालिंदी	45/-
स्मृति–कलश	35/-
श्मशान चम्पा	26/-
रथ्या	26/-
गैण्डा	25/-
भैरवी	25/-
अतिथि	35/-
पूतोंवाली	26/-
कैंजा	26/-
सुरंगमा	25/-
चौदह फेरे	25/-

महान् धार्मिक कथाएं

नरेन्द्र कोहली

राम-कथा पर आधारित उपन्यास

दीक्षा	20/-
संघर्ष	20/-
साक्षात्कार	20/-
अभियान	20/-
युद्ध	20/-

रामकुमार भ्रमर

महाभारत-कथा पर आधारित उपन्यास

आरम्भ	14/-
अग्रज	14/-
असीम	14/-
अनुगत	14/-
अंत	14/-

रामकुमार भम्रर

श्रीकृष्ण-कथा पर आधारित उपन्यास

जन–जन हिताय	20/-
जय	20/-
कालचक्र	14/-
कारावास	14/-
कालिंदी के किनारे	20/-
कर्मयज्ञ	14/-
कालयवन	14/-
जनाधार	14/-
जनपथ पर	14/-
जलयात्रा	14/-

पद्मा सचदेव

का नया मार्मिक उपन्यास

अब न बनेगी देहरी

मूल्य 45/-